UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180098

UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library

Call No. H82.1 M67H

Accession No. 41566

Author [illegible]

Title [illegible]

This book should be returned on or before the date last marked below.

आदर्श और यथार्थ

(कहानी-संग्रह)

लेखक

गंगाप्रसाद मिश्र, एम० ए०, साहित्यरत्न

(विराग, महिमा, संघर्षों के बीच, सगेद की गत,
नया-खून, बिगुल आदि के रचयिता)

प्रकाशक

यूनिवर्सल पब्लिशिंग हाउस

इलाहाबाद

मुद्रक
पं० भृगुराज भार्गव
भार्गव-प्रिटिंग-वर्क्स, लखनऊ

प्रिय मित्र अमृतलाल नागर

को

सस्नेह

समर्पण

इस उपन्यास में जो महिमा
के रूप में अवतरित
हुई हैं उन्हीं को

लेखक

भूमिका

मेरे अब तक लिखे गये तीन उपन्यासों में क्रमानुसार 'महिमा' का स्थान दूसरा है। 'विराग' इसके पहिले लिखा गया था और 'संघर्षों के बीच' इसके पश्चात। स्वभावतः कुछ लोगों को 'संघर्षों के बीच' अधिक पसन्द आया है, पर मेरे लिये तो सब उँगलियाँ बराबर है। 'महिमा' को मेरा उतना ही अंश प्राप्त हुआ है जितना 'संघर्षों के बीच' को। 'महिमा' का एक अपना क्षेत्र है, वह पूर्णतया मनोवैज्ञानिक रचना है, पाठकों के सामने दो हृदय बिल्कुल उधाड़ कर रख दिये गये हैं। नारी और पुरुष का आकर्षण प्रत्याकर्षण वह शास्वत सत्य है जिसकी समस्या आदि काल से मनुष्य के सामने एक प्रश्न वाचक चिन्ह के समान खड़ी रही है। उसी अथाह सागर में मग्न होकर पाठकों को कुछ मोती देने का प्रयत्न किया गया है। यह मुझे विश्वास है कि इस उपन्यास को पढ़कर मनुष्य मनुष्य को पहचानना सीखेगा।

इस कठिन समय में पण्डित गयाप्रसाद जी तिवारी इस उपन्यास को प्रकाशित कर रहे हैं, मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

१-१-४५
भाऊ लाल बाजार
लखनऊ।

गंगाप्रसाद मिश्र

भूमिका

'आदर्श और यथार्थ' में मेरी १४ कहानियाँ संग्रहीत हैं, जिनमें की प्रथम ८ प्रगतिशील हैं। यद्यपि उन लोगों को, जो विरोध अथवा भ्रम के वश में होकर प्रगतिशील और अश्लील को पर्यायवाची समझने लगे हैं, इनसे निराशा हो सकती है। इन कहानियों में जीवन का सच्चा अध्ययन मिलेगा और ऐसे तथ्यों का कथन व विवेचन जिनसे मुँह मोड़े रह सकना किसी भी जागरूक व्यक्ति के लिये सम्भव नहीं है। फिर भी इनके लिखने का उद्देश्य पवित्र है। ऐसा कुछ भी जिसे अवांछनीय कहा जा सके अथवा ऐसी किसी भी बात का दिग्दर्शन जिसे हम अपने छोटों को देते हुए हिचकिचाएँ, इन कहानियों में न मिलेगा। यह कहानियाँ मेरी अपनी 'प्रगतिशील' की परिभाषा के अनुसार लिखी गई हैं जो सत्यं शिवं सुन्दरं की पूर्ण रूपेण प्रतिकृति है।

बाद की कहानियाँ मेरी पहले की रचनाएँ हैं, वे किसी वाद विशेष से प्रेरणा पाकर नहीं लिखी गयी हैं। 'नारी-हृदय' मैंने सन् १९३६ में लिखी थी और सन् १९३७ में वह प्रकाशित हुई थी। एकाध कहानियाँ इससे भी पहले की लिखी हुई हैं। मेरे कुछ मित्रों की इच्छा थी कि मैं इन कहानियों का अपनी आज की शैली के अनुसार संशोधन कर दूँ, पर मैंने यह उनके स्वाभाविक सौन्दर्य का नष्ट करना समझा। इस संग्रह को निकलते हुए देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता है, क्योंकि इसमें अनेक कहानियाँ ऐसी हैं जिनके विषय में मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे पाठकों का मनोरञ्जन कर सकेंगी।

प्रकाशकजी ने काग़ज़ की कमी के समय में इस पुस्तक को प्रकाशित किया है और प्रिय मित्र श्रीहरिराम धवन ने इसे इस रूप तक पहुँचने में सहायता दी है इसलिये मैं इन महानुभावों का आभारी हूँ।

झाऊलाल बाज़ार,
लखनऊ

गंगाप्रसाद मिश्र

विषय-सूची

१	आदर्श और यथार्थ	...	१
२	चखें के बाद	...	१३
३	नरक के कीड़े	...	२१
४	उल्लू आदमी	...	२६
५	दीवाली के दिये	...	३४
६	नास्तिक	...	३७
७	पृथ्वी का स्वर्ग	...	४६
८	कफन-खसोट	...	५६
९	प्रत्यागत	...	७०
१०	चौबे	....	७५
११	नारी-हृदय	...	८३
१२	प्रतिकार	...	९२६
१३	एक स्मृति	...	१३४
१४	प्रतीक्षा	...	१४५

आदर्श और यथार्थ

कई दिनों की हड़ताल के बाद उस दिन यूनिवर्सिटी खुली थी। प्रोफेसर ने आकर हाजिरी लेनी शुरू की तो सुहासिनी बोली—सर, मुझे पिछले दिनों में भी प्रेजेंट मार्क कर लीजिये (उपस्थित बना दीजिये)।

"क्या आप क्लास में तो आईं नहीं ?"—प्रोफेसर ने प्रश्न किया।

"क्लास मे कैसे आतीं, वे लोग आने ही नहीं देते थे"—सुहासिनी ने अपनी विवशता प्रकट करते हुए कहा।

'अच्छा'—कह कर प्रोफेसर ने उसे उपस्थित बना दिया। अन्य विद्यार्थियों ने भी सुहासिनी वाला मार्ग लिया और उपस्थित हो गये। कमलेश का नम्बर आया तो प्रोफेसर ने पूछा—"क्यों मिस्टर कमलेश आपको भी लोगों ने नहीं आने दिया ?"

"नहीं सर, मैं तो खुद लोगों को न आने देने वालों में था।"

"इससे क्या, अभी कई ऐसे लोगों ने जो इस स्ट्राइक नाट्य के मुख्य पात्र थे अपने को यही कह कर उपस्थित करवा लिया है। आप भी कह दीजिये मैं आपको भी उपस्थित बना दूँगा।"

"क्षमा कीजियेगा सर, मैं बड़ा बोल नहीं बोलता, पर मेरे जीवन का आदर्श इन सबसे काफी ऊँचा है।"

"ऐसा ही होना चाहिये"—कह कर प्रोफेसर आगे बढ़ गए। क्लास के लड़कों ने एक दूसरे को देख कर इशारे किये—एक बोला, "बेटा, बड़े धर्मराज बनते हैं।" कुछ ने उसका समर्थन किया, कुछ ने कहा—"भाई हम लोग कह चाहे जो कुछ लें। पर है वह बड़ा निर्भीक और स्पष्टवादी।"

क्लास खत्म हुआ तो सुहासिनी कमलेश के साथ चलने लगी। उसने कहा—"आपको अपनी अटेन्डेन्स की ज़रा भी परवाह नहीं है ?"

"है, तो क्या उसके लिये मैं झूठ बोलूँ ?"

"अपना काम बनाने के लिये सब कुछ करना होता है।"

"आदर्श से डिगने से मैं मृत्यु अच्छी समझता हूँ।"

"आपको अभी दुनिया का अनुभव कम मालूम होता है। यथार्थ का साम्राज्य आदर्श से कहीं विस्तृत है। बल्कि आदर्श कल्पना में है, यथार्थ सर्वत्र ही व्याप्त है।"

दुर्बल हृदयों को तो आदर्श का आलोक चकाचौंध कर देता है। वे उसके पास नहीं फटक पाते।'!

"जो होना चाहिये और होता है, उसमें जो होना चाहिये वह सदैव आकर्षक मालूम होता है, बड़े सुन्दर शब्दों में सजाकर उसे प्रकट किया जा सकता है। फिर भी मैं कहूँगी अभी ऊट पहाड़ के नीचे नहीं आया। अच्छा हटाइये इस सबको। आइये मेरी कार में चलते हैं? कहाँ रहते हैं आप, छोड़ दूँगी।"

"अभी से। मैं कोई लड़की थोड़े ही हूँ जो ज़रा देर हो जाने पर घर में जवाबतलब होगा। मैं दस-ग्यारह बजे तक अपने स्थान पर पहुँचता हूँ।"

कमलेश के सुन्दर हास से सुहासिनी प्रभावित हुए बिना न रह सकी। वह बोली—"घर पर सब लोग प्रतीक्षा करते रहते होंगे।"

"यहाँ सन्यासी होने की सोचने के पहले ही सब का सफाया कर डाला।"

"क्या मतलब?"

"आपने एक कहावत सुनी होगी—आगे नाथ न पीछे पगहा, इनके नाम को रोवे गदहा। यहाँ वही घटित होती है।"

बात कहने के ढंग पर सुहासिनी हँसी, फिर उसके हृदय में करुणा का संचार हुआ। "उस वक़्त तक कहाँ घूमते रहते हैं?"—उसने पूछा।

"लायब्रेरी में पढ़ता रहूँगा या यूनियन में जाकर कुछ लिखूँगा-पढ़ूँगा।"

सुहासिनी के मन में आया कहे—"आइये मेरे यहाँ बैठियेगा।" फिर सोचा—वह मन में पता नहीं क्या समझे। पूछा—"रहते कहाँ हैं?"

"रेलवे यूनियन के दफ्तर में।"

"अच्छा चलती हूँ"—कह कर सुहासिनी अपनी कार में जा बैठी और चल दी। मन में सोचती थी कैसा एकाकी जीवन है इसका। पर है पक्का आदर्शवादी। अक्सर ऐसे लड़के बिगड़ जाया करते हैं, पर वह देश सेवा के आदर्श के अतिरिक्त जैसे और किसी चीज को पहचानता ही नहीं। बड़ी देर तक वह कमलेश के विषय में सोचती रही।

लैवेन्डर की सुगन्धि की लपटें उठाती हुई सुहासिनी जब चल दी-तो कमलेश ने सोचा किसी बड़े बाप की बेटी मालूम होती है, वर्ना इतना फ़ैशन कैसे कर पाती। न जाने कितना इसी में खर्च कर डालती होगी। पर यह काम की लड़की हो सकती है। है बड़ी बोलने वाली मुझे अनुभव हीन बताती है। यह रास्ते पर आ जाय तो कुछ कर दिखाये।

* * *

कोई किसी के जीवन में प्रवेश करके उसे इतना प्रभावित कर सकता है यह यदि सुहासिनी के विषय में घटित होते हुए न देखा गया होता तो विश्वास न किया जा सकता। गत तीन वर्षों में ही सुहासिनी में जमीन-आसमान का अन्तर हो गया है। अब वह फ़ैशनेबुल सुहासिनी नहीं रही, अपना सब कुछ देश को देकर वह देश का कार्य करती हुई घूमती है। पर ऐसा नहीं है कि कमलेश का ही प्रभाव सुहासिनी के जीवन पर पड़ा हो, सुहासिनी ने भी कमलेश के जीवन को प्रभावित किया है। यदि कमलेश के प्रभाव से, सब कुछ त्यागकर व्यक्तिवाद की भावना को भुलाकर. सुहासिनी पूर्ण रूप से सार्वजनिक जीवन में आ गई है, तो सुहासिनी के अम्लान सौन्दर्य, उज्ज्वल चरित्र और सच्ची कर्त्तव्य-निष्ठा ने भी कमलेश को सार्वजनिक जीवन के अतिरिक्त हृदय की स्थिति व अनुभूति का ज्ञान कराया है।

तीन दिन हुए वह ६ महीने के बाद जेल से लौटी है, और आज ही कल में छूटने वाले कमलेश की प्रतीक्षा कर रही है। जेलजीवन से क्लांत मस्तिष्क अभी कुछ आगे के कार्यक्रम को निश्चित नहीं कर सका है, और इस समय अकेले बैठी-बैठी वह ऊब रही है। अखबार

और पुस्तकों के पढ़ने का सब प्रयत्न विफल हुआ है। वैसे ही आगया कमलेश, सिर व चेहरे के बाल बढ़े हुए हैं और कुछ दुर्बल सा दिखलाई पड़ रहा है। आकर भावावेश में सुहासिनी के दोनों हाथ अपने हाथों में ले लेता है और उसे देखता ही रह जाता है कुछ कह नहीं पाता।

"क्यों कैसे रहे कमल, तुम ?"

"हाँ अब तुम्हें देखकर तो अच्छा ही हूँ।"

"नहीं जेल की बतलाओ। वहाँ कैसी कटी ?"

"वहाँ सब से बड़ा दुख तो था तुम्हारा अभाव।"

"इसके अतिरिक्त ?"

"जेल में जैसा सुख अथवा दुख साधारणतया मिला करता है वही मिला। कोई असाधारण बात नहीं हुई। इस बार की जेल यात्रा में मुझे दो बातों का बड़ा जबर्दस्त अनुभव हुआ।"

"वह क्या ?"

"एक तो यह कि तुम्हारे अभाव में मुझे यह प्रतीत हुआ कि तुम मेरे जीवन के लिये कितनी आवश्यक हो। दूसरे यह कि अब जीवन में तुम मुख्य हो चली हो और देश सेवा गौण।"

"यह तो कोई अच्छी खबर नहीं है, कमल। इस परिवर्त्तन के लिये कम से कम मैं तो तुम्हें बधाई नहीं दे सकती।"

"उसकी मुझे कुछ विशेष कामना भी नहीं है, सुहास। फिर इस बात को भी तुम्हें नहीं भूल जाना चाहिये कि संसार में सिर्फ़ जो अच्छा है आदर्श है, वही नहीं होता, बल्कि जो अच्छा नहीं है पर यथार्थ है, वही ज़्यादा होता है।"

"यह मैं क्या सुन रही हूँ। कहीं मेरे कान धोखा तो नहीं दे रहे हैं।"

"नहीं, सुहास। मुझे विश्वास है कि तुम और तुम्हारे कान अभी बिलकुल ठीक हैं।"

"क्या अपनी उस दिन की बातों को भूल गये, कमल, जो तुमने मुझसे और प्रोफेसर से की थीं ?

"नहीं सुहास मैं इतना विस्मरणशील नहीं हूँ।"

"तब क्या मैं यह समझूं कि जेल के कष्टों ने तुम्हें अपने उच्च आदर्श से गिरा दिया?"

"यह भी नहीं सुहास, मैं इसके पहले भी दो बार जेल जा चुका था, और मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि वहाँ इस बार मुझे कोई विशेष शारीरिक कष्ट नहीं हुआ। परन्तु मानसिक चिन्तन व अनुभव ने यह चीज मेरे सम्मुख स्पष्ट कर दी कि यथार्थ का क्षेत्र आदर्श से कहीं विस्तृत है और वही अधिक स्वाभाविक है।"

"लेकिन क्या जीवन का लक्ष्य वही आदर्श नहीं होना चाहिये?"

"मैं इस प्रश्न का उत्तर पहले ही दे चुका। कौन है, जो इस संसार में आदर्श को नहीं जानता, नहीं पहचानता? इसका पाठ वर्णमाला के साथ ही साथ संसार का प्रत्येक बालक पढ़ता है। सच बोलो, चोरी न करो, किसी को दुख न दो, बड़ों का कहना मानो। प्रत्येक व्यक्ति इन बातों को जानता है और जानते हुए भी उनका उल्लंघन करता है। दूसरे, आदर्श की प्राप्ति वह भी न कर सके जिनको ईश्वर का अंश बतलाया जाता है। सच तो यह है कि आदर्श जहाँ एक ओर ध्येय और उच्च लक्ष्य स्थापित करने के लिये है, वहीं टूटने के लिये भी है।"

"यह अपना-अपना सिद्धान्त है, कमल।"

"क्या इसके माने मैं यह समझूँ कि इस विषय में हम दोनों में समझौता न हो सकेगा?"

"ऐसा क्यों? हमें इस ओर प्रयत्नशील होना चाहिये।"

"अपने जी की मैं कह दूँ, सुहास, फिर तुम चाहे मुझे उसके लिये पतित ही समझो। बात यह है कि स्वतन्त्रता-युद्ध के वर्तमान साधनों से अब मेरी आस्था उठ चुकी है। इस जीवन में गद्यात्मकता इतनी रही है कि अब हृदय का एक-एक कण काव्य की प्यास से व्याकुल है।"

"ओह, मैं देखती हूँ तुम कवि होगए हो, कमल।"

"इसका श्रेय तुम्हीं को है, सुहास।"

"परन्तु मेरी धारणा कवियों के विषय में कुछ विशेष अच्छी नहीं है, कमल। वे अधिकतर अकर्मण्य हुआ करते हैं।"

"मैं भी तुम्हारी धारणा का क्रियात्मक रूप से अनुमोदन करने जा रहा हूँ। अब मैं इस सार्वजनिक जीवन से ऊब चुका हूँ, बहुत समय इसमें गँवाया। आखिर व्यक्ति का भी कुछ मूल्य है अथवा नहीं?"

"उसका उचित मूल्य समाज के हित के लिए उत्सर्ग हो जाने में ही प्राप्त हो सकता है।"

"अब मैं इस प्रकार नहीं सोच पाता सुहास। समाज हित व सार्वजनिक जीवन छोड़ कर मैं अपने-आप ही में ही भूल जाना चाहता हूँ। पर उसके लिए बड़ा आवश्यकता है तुम्हारी।"

"आज तो तुम्हारी बातों को समझने के लिए बड़ा कठिन परिश्रम करना पड़ रहा हूँ।"

"स्पष्ट करके कहूँ, तो यह कह सकता सकता हूँ कि अब जीवन की एक मात्र अभिलाषा यह रह गई है कि नित्य की परेशानी और झंझट छोड़ कर हम तुम कहीं ऐसी जगह चल कर रहें, जहां कोई परिचित न हो, कोई ऐसा न हो जो मुझे क्रियात्मकता छोड़ते देख दाँतो तले उँगली दबाये।"

"यह मुझसे न होगा, कमल। यदि तुम कहते कि आओ, हम तुम एक होकर देश के लिए अधिक शक्ति का संचय कर आगे बढ़ने का प्रयत्न करें, तो मैं शायद तुम्हें अस्वीकार न कर सकती, पर तुम्हे देश और जनता से छीन लेने के लिये तुम्हारे जीवन में पदार्पण मुझसे न हो सकेगा।"

"यह मैं समझता हूँ, सुहास, कि तुम मेरी ओर जो आकर्षित हुई थीं उसका मुख्य कारण मेरा वह आदर्श जीवन ही था, न कि और कुछ।"

"यह भी साथ में कह डालो कि आज उस आदर्श से पतित होते देख कर तुम मेरी ओर से विकर्षण का अनुभव कर रही हो।"

"सत्य तो यही है।"

"तब तुम जान बूझ कर मुझे और आदर्श दोनों को ही क्यों खो देना चाहते हो ?"

"तब आदर्श के लिए नहीं पर तुम्हारे लिए सुहास, मैं अपने परित्यक्त मार्ग की ओर आने की सोचता हूँ।"

"खैर किसी के लिए सही। बधाई।"

* * *

"क्यों सुहास यह मामला क्या है।" —श्रीमती गुप्ता ने प्रश्न किया।

"कहा ?"

"यह तुम और कमलेश बाबू मिल मिल कर क्या दावत दे रहे हो ?"

"मेरी समझ में कुछ दाल में काला है।" —कुमारी सिनहा ने कहा।

"तुझे भी अब दाल में काले की फिक्र होने लगी ?"

"मेरी समझ में तो यह जो मिल मिल कर दावत दी जा रही है, इसके माने यह है कि यह और कमलेश बाबू सदा के लिए मिलने जा रहे हैं।"—श्रीमती गुप्ता ने अन्दाजा लगाया।

"ख्याल काफी ठीक है तुम्हारा"—कुमारी सिनहा ने कहा—"क्यों न, सुहास।"

"तुझे आम खाने से मतलब या पेड़ गिनने से ?"

"भाई न तो पेड़ों को जरूर गिन लेता हूँ और पहचान लेती हूँ कि मैं किन-किन का कष्ट दे रही हूँ। देखो कमलेश बाबू कुछ कहने जा रहे हैं।"

कमलेश कहता है—"अब आप लोग भोजन प्रारम्भ करने की कृपा कीजिए।"

एक वृद्ध खड़े हो कर कहते हैं—"प्रारम्भ करने से पहले मैं अपने मेजबानों से मेहमानों की तरफ से प्रार्थना करूंगा, कि कृपया वे यह बतलाने का कष्ट उठावें कि यह दावत किस उपलक्ष्य में दी जा रही है ?"

कई लोग बोल पड़ते हैं—"अवश्य, अवश्य।"

कमलेश—"आज से हम दोनों एक होने जा रहे हैं, इसलिए आप लोगों की शुभ-कामनाएँ व आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए ही हम दोनों ने आप महानुभावों को कष्ट दिया है।"

और तुम्हें लेकर बातें किया करते थे। यह हम दोनों ही जानते थे कि हमारा प्रेम सम्बन्ध पवित्र था। आज वे मुझे और किसी और को लेकर बातें करते हैं। मैंने उनकी बातों की न तब परवाह की न अब करती हूँ, और तुम्हें चाहिये कि तुम भी न करो।"

कमलेश—"यह सम्भव नहीं। देखते हुए कोई मक्खी नहीं निगल सकता।"

सुहासिनी—"तो यह क्यों नहीं कहते कि तुम्हारे मन में सन्देह हुआ है। इतनी देर से पहेलियाँ बुझा रहे हो।"

कमलेश—"मैं समझता था कि तुम बात का मतलब समझ सकती हो।"

सुहासिनी—"मुझसे बहुत बड़ी ग़लती हुई। तुम्हारी मीठी मीठी बातों में आकर मैंने अपना जीवन भ्रष्ट कर दिया।"

कमलेश—"अब भी क्या हो गया है, तुम अपनी गलती सुधार सकती हो।"

सुहासिनी—"हाँ प्रयत्न करूँगी। पर कपड़ा फट चुका है, वह फिर से साबित नहीं हो सकता, पैवन्द ही लगेगा। पुरुषों का कार्य ही यह है कि जब तक वे एक स्त्री को प्राप्त करने का प्रयत्न किया करते हैं तभी तक उस पर उनका प्रेम रहता है, पर मिलन अथवा प्राप्ति के दिन से ही विकर्षण शुरू हो जाता है। मैं कितनी मूर्ख थी उस समय, उस ओर मेरा ध्यान ही न गया।"

कमलेश—"तुम कोई नई बात नहीं कर रही हो। अक्सर दोषी लोग दूसरों पर लांछन लगाया करते हैं। यदि मैं तुम्हें इस प्रकार अनमोल की ओर आकर्षित होते न देखता, तो मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति विरोध की भावना जाग्रत न होती।"

सुहासिनी—"कान खोल कर सुन लो, कमल तुमने उस दिन प्रतिज्ञा की थी कि तुम मेरे वास्ते देश के कार्य में लगोगे, पर क्या किया तुमने? विवाह सम्बन्ध के पश्चात् तुम्हारी यही इच्छा रही कि मैं घर में बैठ कर तुम्हारे साथ प्रेमालाप करती रहूँ। स्वयं काम करना तो दूर, तुमने मुझको भी देश से छीन लेना चाहा। मैं यह किसी प्रकार स्वीकार न कर सकी।

तुम्हारे प्राथमिक देश-सेवक रूप के ,जिसे देखकर मैं तुम पर मोहित हुई थी, इस समय मुझे अनमोल में दर्शन हुए, इसलिये वह मेरी श्रद्धा और भक्ति का पात्र है। तुम अपने आदर्श से स्वयं पतित हो गये हो, मुझे दोषी बताते हो।"

कमलेश—"यों ही सही। मैं पतित हूँ तो अब मेरी ज़रा भी इच्छा नहीं रही कि मेरा उच्च लोगों से यह भ्रामक सम्बन्ध किसी प्रकार भी रहे।"

सुहासिनी—"अच्छा! यहां तक! तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी।"

* *

मिस्टर गुप्ता—"बधाई भाई कमलेश।"

कमलेश—"आखिर क्यों?"

मिस्टर गुप्ता—"तुम पिता होने जा रहे हो।

कमलेश—"यह बेपर की किसने उड़ाई? आप ही के दिमाग की सूझ है या कोई और महानुभाव हैं?"

मिस्टर गुप्ता—"यानी यह बात झूठ है?"

कमलेश—"सरासर।"

मिस्टर गुप्ता—"तब फिर यह दावत किस बात की हो रही है?"

कमलेश—"सुहासिनी की इच्छा या सनक।"

मिस्टर गुप्ता—"तब भी तुम्हें बधाई।"

कमलेश—"बिला वजह ही।"

मिस्टर गुप्ता—"नहीं इसलिये कि आज कल के समय में भी तुम इतने धनी हो कि अकारण ही दावत कर सकते हो।"

कमलेश—मैं क्या करूँ भाई, मुझसे सुहास ने कहा कि मैं दावत करने जा रही हूँ, निमंत्रण पत्र में तुम्हारा भी नाम दे रही हूँ, मैंने स्वीकृति दे दी।"

सुहासिनी—"अब मैं आप लोगों से भोजन प्रारम्भ करने की प्रार्थना करूँगी।"

एक वृद्ध खड़े होकर प्रश्न करते हैं—"मैं इस अनुग्रह का कारण जानना चाहता हूँ।"

सुहासिनी—"हर बार इतनी उत्सुकता अच्छी नहीं, बाबा जी। आज पहले भोजन कर लीजिये, तब कारण जानियेगा।"

सब लोग भोजन करने लगे। भोजन समाप्त हो जाने पर सुहासिनी ने सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए कहा—"महाशयो और देवियो, शायद उस दिन की याद आप न भूले होंगे, जब मैंने और कमलेश जी ने आप लोगों को अपने एक होने के साक्षी रूप में बुलाया था आज दुर्भाग्यवश वह दिन आ गया है, जब हम दोनों को अलग होना पड़ रहा है। तब मेरे हृदय मे यह इच्छा हुई कि जिनके सामने हम एक हुए थे, उन्हीं के सामने ही अलग हों।"

एक स्त्री—"बड़ी विचित्र बात है।"

वही वृद्ध—"अरे भाई इतनी जल्दी।"

कमलेश घबड़ा जाता है—"लेकिन मेरी यह इच्छा तो न थी, सुहास।" सुहासिनी—"नहीं कमलेश जी आपकी यही इच्छा थी और मैं इसे पूर्ण कर रही हूँ।"

कमलेश—ऐसे कौन से पति-पत्नी हैं जिनमें आपस में झगड़ा नहीं हो जाया करता। तो क्या कोई तुम्हारी तरह इन चीजो को सबके सामने रखता या अलग होः जाना चाहता है।"

सुहासिनी—"मैं नित्य की झिड़की खानेवाली और पति के सिर पर भारस्वरूप लदी रहने वाली पत्नी नहीं बनना चाहती। हम एक हुए थे इस कारण कि दोनों देश-सेवा-मार्ग के पथिक थे और एक दूसरे से प्रेम करते थे। आज तुम देश-सेवा के मार्ग से हट गये हो, मेरे व्यक्तिगत चरित्र पर तुम्हें सन्देह है और मुझे भी कहना पड़ेगा कि मैं उन्हीं कमलेश की भक्त हूँ जो देश का था, जो सिर्फ अपना ही है उसे मैं न चाह सकूँगी। मुझसे जो कुछ तुम्हें चाहिये था वह तुम्हें मिल गया। उस तृप्ति ने ही तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति घृणा उत्पना उत्पन्न की। संसर्ग से घृणा होती ही है। यदि तुम कहते हो कि तुम मुझ से ऊब नहीं गये हो, तो मैं कहूँगी कि अब एक बार नये सिरे से अलग होकर एक दूसरे को प्राप्त करने काप्रयत्न करें। वही अच्छा होगा।"

कमलेश—"लेकिन इस नाटक की पुनरावृत्ति की आवश्यकता ही क्या है ?"

सुहासिनी—"है कमलेश जी। आपका ध्यान व्यक्तिगत जीवन से सार्वजनिक जीवन की ओर जायगा और हम दोनों के हृदय का विकर्षण भी हटेगा।"

कई मेहमान उठने लगते हैं। वृद्ध कह रहे हैं—"ऐसा तो न होना चाहिये।"

सुहासिनी—"शीशा टूटकर जुड़ना जरा कठिन होता है बाबा। अच्छा मैं चली।"—कहकर सुहासिनी हाथ जोड़े मेहमानों के पीछे फाटक के बाहर चल दी।

कमलेश आश्चर्यान्वित उसका मुँह देखता ही रह गया।

'चर्खे के बाद'

चौखटे के सूराखों में ताने का तागा पिरोते हुए त्रियुगी ने कहा—'क्यों रे पल्ला, क्या कोई ऐसी तर्कीब नहीं निकल सकती जिससे हम लोगों को इतनी मेहनत न करना पड़े ?"

पल्ला कुछ विचारमग्न सा था। त्रियुगी की आवाज़ सुनकर विचार धारा टूटी। ज़रा गर्दन टेढ़ी करके त्रियुगी की बात सुनी और बोला—"यार हम लोगों की तो कोई बात नहीं, जो कुछ जैसा भी करना होता है अपनी ताक़त से काम लेकर उल्टा सीधा कर ही डालते हैं, पर स्त्रियों का कष्ट देखकर तो छाती फटती है। राक्षसों की तरह जुटकर हम लोग तो किसी तरह सुबह से शाम तक बीस गज़ कपड़ा पूरा कर डालते हैं लेकिन स्त्रियों के लिए दो हज़ार गज़ सूत एक दिन में कातना कितना कठिन काम है। मेरी सुरुचि जिस समय काम करके लौटती है तो देखता हूँ उसकी उँगलियों के पोर सूज आते हैं।"

त्रियुगी का हृदय भी आर्द्र हो आया, वह बोला—"वाक़ई में उन लोगों को हमसे ज़्यादा कष्ट है। उस रोज यहाँ से घर जाते वक्त बड़े भाग्य से सविता से रास्ते में भेंट हो गई; उसका गुलाबी चेहरा कुम्हलाया हुआ था और आँखों में आँसू भरे हुए थे। मेरे समाचार पूछने पर फूट फूट कर रोने लगी। फिर अपनी पीठ मुझे दिखाई। नीले नीले अनगिन्ती बत पड़े हुए थे। पूछा—क्या बात हुई? तो बोली—'आज हाथ में दर्द होने की वजह से तकुली घूमती ही न थी, मैं साढ़े सत्रह सौ गज़ सूत ही कात पाई, इसी पर जमादारिन ने पीठ की यह हालत कर दी है।' मेरा खून उबल उठा, लेकिन कोई चारा न था। तब से मैं भी अक्सर यह बात सोचा करता हूँ कि अगर कोई ऐसी तर्कीब हम लोग ढूँढ़ पाते जिससे कम वक्त में ज़्यादा सूत कत सकता तो कितना अच्छा होता।"

पल्ला त्रियुगी की आँखों में आँखें डाल कर बोला, "कुछ तकलीफ़ भी उठा सकते हो कि खाली बातें ही बातें?"

"नहीं, ये बात नहीं है, जो कुछ कहो करने को तैयार हूँ।"

"सुनो, उस रोज़ जो पोत अपने द्वीप के किनारे लगा था उसका एक यात्री मुझसे कहता था कि अपनी मातृभूमि भारतवर्ष में एक आदमी ने तकुली के तकुवे को एक पहिये में ऐसा लगाया है कि तकुली की वनिस्बत कई गुने तेज़ी से सूत उसमें कतता है। उसे क्या कहते हैं यह मुझे ठीक याद नहीं रहा। अगर हिम्मत हो तो आओ भारतवर्ष चल कर वह चीज़ ले आवें।"

त्रियुगी के मुख पर एक क्षण के लिए प्रसन्नता की रेखा आई पर वह बहुत शीघ्र विदा भी हो गई। उसने उदासी से कहा—"हाँ अगर हम लोग उसे ला सकते तो होता तो बड़ा अच्छा। लेकिन पहली बात तो यह है कि यह श्रेष्ठी जो हम लोगों को भारत से खरीद कर लाया है अपने हाथ से क्यों निकलने देने लगा। और मान लो वह जाने भी दे तो यहाँ कौन सा पोत धरा है जिस पर चढ़ कर हम तुम इस विशाल हिन्द महासागर को पार कर सकेंगे।"

"श्रेष्ठी को तो मैं समझा लूँगा और जागेश्वर की बड़ी नौका माँग लेंगे, मुझे वह देने से इन्कार नहीं करेगा। बस तुम्हारे कमर कसने की देर है।"

"अच्छी बात है। लेकिन नौका में है बड़ा खतरा। कहाँ हिन्द महासागर की वह ऊँची ऊँची लहरें और कहाँ वह नौका। खैर, कोई बात नहीं, मैं तयार हूँ।"

दोनों काम में लग गए। शाम होते होते जमादार अपनी गज लेकर आ गया। कपड़ा नापा, दो चार इधर उधर की खुचेड़ निकाली — "यह इतना खुर्दरा क्यों है? यह सूत क्यों निकला हुआ है?" मजदूर के सूत की खराबी बताने पर बिगड़ उठा, उसे बाहर ढकेल दिया और दूसरे का कपड़ा नापने में लग गया।

* * *

सूर्य की किरणों ने अभी अभी आसमान को लाल रंग में रँगना शुरू किया था लेकिन उस श्रेष्ठी के द्वीप के किनारे उन क्रीत दासों की एक बहुत बड़ी भीड़ एक नाव के पास खड़ी हुई थी।

हवा प्रसन्नता से नाव के पालों को हिला रही थी और सूर्य एक एक बालू के कण को सुनहला बना रहा था पर सुरुचि और सविता के हृदय में लाख प्रयत्न करने पर भी आँधी सी चल रही थी और उन्हें सब तरफ़ अँधेरा सा होता हुआ दिखाई पड़ता था।

त्रियुगी और पल्ला सब लोगों से मिल मिलकर बिदा ले रहे थे। पुरुष आपस में कहते थे —"ये लोग कितने चतुर हैं कि महाजन से भी इन्होंने छुट्टी ले ही ली।" स्त्रियाँ देवी देवताओं को हृदय में मनाती हुई कहती थीं—"परमात्मा इनका कल्याण करे, ये हम लोगों की सुविधा के लिए ही तो इतना कठिन प्रयास करने जा रहे हैं।"

नाव चली। जिन लोगों ने कठिनता से अपने आँसू रोक रक्खे थे वे भी फूट पड़े। पल्ला और त्रियुगी के हृदय में भी उत्साह के स्थान को मोह ढकेल कर लेने की कोशिश करने लगा और वे एकटक अपने उन आत्मीयों की ओर देखते रहे। पल्ला का छोटा बच्चा माँ की गोद से उतर

उतर कर पिता के पास जाने को मचल रहा था ; सुरुचि अपने दुःख को हृदय में ठेलकर उसे ही पुचकारने में लगी थी और सविता—वह तो मूक और भावहीन खड़ी थी। उसके मुख पर किसी प्रकार का भाव दृष्टिगोचर न होता था पर उसके हृदय में—आह ! एक बड़ी गहरी वेदना थी। त्रियुगी और उसमें उस समय से ही प्रेम था जब वे दोनों भारतवर्ष के उस गाँव में नीम तले खेलते थे, दोनों को सचिव के नौकर एक साथ ही उस गाँव से गुलाम बनाने को पकड़ लाए थे और दोनों महाजन के उस द्वीप में एक साथ ही दागे गए थे। इन सौभाग्य और दुर्भाग्य के खेलों में सदा साथ ही रहने के कारण उनका प्रेम बन्धन गाढ़ा हो गया था, और जब समय आया था कि वे सदा के लिए प्रेम रज्जु में बँध जाते त्रियुगी त्यागशील होकर हिन्द महासागर में वह छोटी सी नाव लेकर चल दिया था और सविता अपने एक एक आँसू को खून बना कर हृदय ही में पी रही थी।

उनकी नाव ठीक उत्तर की ओर चली जा रही थी, ठीक उत्तर की ओर; सूर्य पश्चिम की ओर उतरता चला जा रहा था, ठीक पश्चिम की ओर। आकाश खाली था, स्थल की भाँति उस समय वहाँ चिड़ियाँ अपने घोंसलों को न लौट रही थीं। डाँड़ चलाते हुए त्रियुगी अपने द्वीप की उस मीठी संध्या के विषय में सोचता था, 'जब वह और सविता महाजन के यहाँ से आते समय कभी कभी मार्ग में मिल जाते थे और दोनों किसी एक के घर जाकर एक साथ हाथ पैर धोकर अपना श्रम दूर करते थे।

पल्ला मन में सोचता था 'मैं इस वक्त कैसे उत्साह से घर की ओर लौटता होता था, चरवाहे जानवरों को लिए हुये आते दिखाई देते थे, लोगों के घर से धुवाँ निकलता हुआ आकाश में चक्कर लगा-लगा कर ऊँचा उठता था। काम से आई हुई सुरुचि मन्नू को लेकर खेलने लगती थी, और मुझे आते देखकर मन्नू मेरे पैरों से लिपट कर कितना खुश होता था। वह सन्ध्यायें जितनी सुखद आज मालूम हो रही हैं वैसी और कभी क्यों न मालूम हुई थीं।

इतने में पाल कुछ ज़ोर से फड़फड़ाया और पल्ला ने उसकी ओर देखकर त्रियुगी की ओर दृष्टिपात किया। बड़े स्नेह से बोला "क्या सोच रहा है तिया ?"

"कुछ नहीं, यही कि हम लोगों का भाग्य ही तो हमें यहाँ तक बुला लाया, नहीं भला वह दुष्ट महाजन किसी को ऐसे छोड़ सकता था !"

पल्ला ने कहा—"ठीक कहते हो, मैं जब उससे कहने गया तो बोला—देखो भागने की चेष्टा मत करना, मेरे मित्र मन्त्री की आँखों से तुम्हारा यह मत्थे का निशान न छिपेगा और तब तुम्हें कुत्ते की मौत मरना होगा। तुम्हीं बताओ मैं भाग कर जाऊँगा कहाँ ? जन्मभूमि में पास का कोई रिश्तेदार तक नहीं, माँ बाप सब मर गये; द्वीप में अपने कहने को सुरुचि और मन्नू तो हैं, उन्हें छोड़ कर कहाँ जाऊँगा !"

त्रियुगी ने सिर हिलाया, डाँड़ छपाक छपाक करके नाव को बढ़ाते रहे।

* * *

दिये की बत्ती को जलाने के लिए ठीक करते हुए सुरुचि ने कहा—"आज उन लोगों को गये हुये, अट्ठाइस दिन हुये, क्यों न सविता ?"

दोनों वियोगिनी एक दूसरे की ओर आकृष्ट होकर आपस में सहानुभूति ही नहीं स्नेह करने लगी थीं। यहाँ तक कि सविता को सुरुचि की कोठरी में आकर रहना पड़ा था।

सविता बोली—"हाँ अब तो वे लौटते होंगे, लेकिन कौन जाने कैसे होंगे, कहाँ होंगे। समुद्र की उत्ताल तरंगें और वह छोटी सी नाव ! मैं अब मन में बड़ा पछताती हूँ कि तिया के मन की साध अब तक न पूर्ण करके मैंने शायद भूल की।"

सुरुचि सविता को आश्वासन देते हुये बोली—"नहीं नहीं, भूल किस बात की ? गृहस्थी तो जितना देर में की जाय उतना ही अच्छा है।" सुरुचि के मुख पर हाथ रख कर मन्नू बोला—"माँ, पिता कब आवेंगे ?"

सुरुचि ने मुस्करा कर कहा—"देख मुझे यह बोलने तक नहीं देता, गृहस्थी के यही सुख हैं।"

* * *

"पचास स्वर्ण मुद्रा इन दोनों के कुछ बहुत तो नहीं दिये, क्यों पल्ला ?"

"पल्ला डाँड़ वाला हाथ रोक कर बोला—नहीं बहुत काहे को दिये। फिर ये कोई ख़ाली चखों के ही थोड़े ही हैं, मैं उस कारीगर के पास तीन रोज़ लगातार बैठकर इनका बनाना भी सीख गया हूँ। यह तो बड़े मजे की बात है न ?"

रुई की पोनी को तकुवे से लगाकर त्रियुगी बोला—"इससे सूत कातने में कैसा मज़ा आता है। रेशे अपने आप खिंचते चले आते हैं, और कैसा मज़बूत तागा बनता है। मैं तो इसे सविता को देकर कहूँगा, मैंने अपनी सारी पूँजी इसमें लगा दी, यह तेरा हो गया, अब तू मेरी होने में देर न कर।"

पल्ला बोला—"मैं तो महाजन से कपड़ा बनाने से छुट्टी ले लूँगा और चर्खे बना बना कर सुन्दरी स्त्रियों के हाथ बेचा करूँगा। यह चर्खा मेरी दूकान के आगे नमूने के तौर पर रखा रहेगा।"

"देख चाँदनी में लहरें लेता हुआ पानी कैसा मालूम होता है, जैसे हवा किसी सुन्दरी की मलमल की चादर को धीरे धीरे हिला रही हो। इस वक्त सविता साथ रहती तो कैसा अच्छा रहता।"

"बीस दिन बाद द्वीप पहुँचोगे, तब चाँदनी ही होगी, तब सविता के साथ ब्याह करके सुख से रहना।"

* * *

"हे भगवान, ऐसी घोर आँधी! कैसी कालिमा छा रही है। सविता चलो घर चलें, मन्नू कहीं जग जायगा तो आस पास वालों का सोना हराम कर देगा।"

द्वीप के किनारे, उस निर्जन में ठीक उसी जगह जहाँ उस रोज़ नाव खड़ी थी, खड़ी हुई सविता एक लम्बी साँस लेकर बोली—"हम

तुम आँधी को क्या जानें, आँधी तो उन्हें लग रही होगी। इस अंधकार में भूल कर भगवान कहीं तुम उन्हें भी रास्ता न भुला देना।"

* * *

"पाल को ज़रा और तिरछा कर दो तिया, देखो फटा जा रहा है। मैं डाँड़ मज़बूती से लगा रहा हूँ। ओहो नाव कैसी हिल रही है! मोम तूने डब्बों की सन्धों में ठीक लगा दिया है न? अब पानी तो न पहुँचेगा? हाँ बताया नहीं तूने क्या लिखा है अपनी चिट्ठी में?"

"यही की सविता मेरी तुमको यह अन्तिम भेंट है। देखो पैंतालीस दिन हो गए, कभी कुछ न हुआ, आज तीन दिन का रास्ता रह गया, तो यह तूफ़ान उठा है। मोम की तरफ़ से तू निश्चिंत रह, इनमें एक बूँद पानी भी नहीं पहुँच सकता। ये डब्बे ठीक उसी जगह जाकर लगेंगे, जहाँ अपनी नाव खड़ी थी।"

"ओह! ये पानी की बौछार है या तीरों की वर्षा। अब अफ़सोस होता है कि महाजन से चलने को क्यों न कहा, ये सुख तो उसी के लायक थे। देख जरा पैर से आड़कर तिया, कगर का वह पटरा उग्वड़ा जा रहा है।"

"अरे पाल तो वह गया फटके, पल्ला बचाना इस झोंके से नाव।"

* * *

अभी समुद्र तट से लौटे एक घड़ी भी न बीती थी कि दोनों अपनी कोठरियों के बाहर निकल आईं।

"क्यों क्या है सुरुचि, सोई नहीं?"

"लेटी तो थी, लेकिन एक ऐसा बुरा सपना देखा कि पसीने पसीने हो गई, देख इस आँधी पानी में पसीने से वस्त्र भींगे हुए हैं; और तू कैसे उठ आई?"

"मेरे तो सीने में बड़ी ज़ोर का दर्द उठा है, ओह!"

* * *

सविता खड़ी रो रही थी, आँसू बहाकर नहीं, हृदय ही में। इतने में बिलखती हुई सुरुचि पहुँची—"वह लोग डूब गये मालूम होता है।"

सविता ने ऐसी दृष्टि से सुरुचि की ओर देखा, जैसे उसे यह सब बहुत पहले से मालूम था।

सुरुचि सिर के बाल नोचती हुई बोली—"उन लोगों ने डब्बों में बन्द करके दो चर्खे पानी में डाल दिये थे वह यहाँ आगये हैं; मन्नू के बाप ने चर्खा बनाने की सब तर्कीब लिखकर भेजी है और तिया ने काग़ज़ में लिखकर भेजा था—कि मेरा वाला चर्खा सविता को अन्तिम भेंट है। महाजन ने यह सब कुछ नहीं माना। दोनों चर्खे रख लिए, और बढ़इयों से वैसे ही चर्खे बनवा रहा है—अब औरतों से दस हज़ार गज़ सूत रोज़ कतवावेगा। कैसा दुष्ट है यह!"

सविता का रुदन बन्द हो गया, आन्तरिक और वाह्य सब। मज़दूर महाजन के कारखाने की ओर बढ़े चले जा रहे थे कि सविता उनके आगे आकर खड़ी हो गई—"तुमने अपना खून बहुत दिनों पिलाकर इस महाजन को मोटा किया है और खुद दुर्बल हुए हो। अगर इस प्रकार खून देकर भी तुम जीवित होते हुए भी मृत के समान हो रहे हो, तो दूसरों को उससे जिलाने की कोई आवश्यकता नहीं। हम कारखाने में काम न करेंगे, बला से भूखों मरेंगे लेकिन आततायी को भी मारकर ही छोड़ेंगे।"

मज़दूर लौट पड़े।

इस प्रकार उसी दिन पहली बार हड़ताल की प्रवृत्ति एक महिला हृदय में जाग्रत हुई।

* * *

सूर्य की चमकती हुई धूप में, बालू पर, दो लाशें उस निर्जन अनजान प्रदेश में पड़ी हुई थीं। दुःख या चिन्ता का कोई भाव उनके मुख पर न था, वरन थी एक मुस्कराहट, पता नहीं अपने द्वीप में चर्खा पहुँचा देने की खुशी में या हड़ताल की प्रवृत्ति के कारण।

नरक के कीड़े

तोपखाना बाज़ार के पीछेवाला नाला मानो स्वर्ग और नरक के बीच की सीमा है। उसके एक ओर हैं फौजी साहबों के नौकरों और खानसामों के झोंपड़े और दूसरी ओर हैं साहबों, अधगोरे साहबों और उनकी नक़ल करनेवाले हिन्दुस्तानी साहबों और बाबुओं के बँगले व क्वार्टर। नौकरों के झोंपड़ों में—

उन घरों को लजानेवाली चीज़ों में—जो दीवारों की पैरोडी और खपरैलों से मिलाकर बने हैं, जिनसे अधिक साफ सभ्य लोगों के कुत्तों की बँधने की जगहें हुआ करती हैं, जहाँ कोई भी सभ्य कहलानेवाला जीव साँस लेने के बजाय मर जाना अधिक पसन्द करेगा। गन्दगी का वीभत्स ताण्डव-नृत्य प्रतिक्षण हुआ करता है। आठ फुट चौड़ी और दस ग्यारह फुट लम्बी उन कोठरियों में कितने आदमी रहने चाहिये इस बात का निर्णय कोठरी की लम्बाई-चौड़ाई अथवा उसके आयतन पर निर्भर नहीं रहना, बल्कि परिवार के सदस्यों की संख्या ही उसकी निर्णायक हुआ करती है। तारीफ़ की बात यह है कि जितनी परिवार के सदस्यों की संख्या में वृद्धि होती जाती है कोठरी के रहनेवाले उतना ही सिकुड़कर उठना-बैठना और सोना सीखते जाते हैं। लज्जा हया अथवा शर्म नाम की चीज़ यहाँ से मुँह छिपाकर भाग गई है। जब तक सुमति रहती है बाप-बेटे अपने स्त्री-बच्चों सहित ज़मीन पर बिछाकर सब एक ही लाइन में सो जाते हैं। पर्दा डालने की न कोठरी में जगह है न उसके लिए पर्याप्त कपड़ा। जब किसी के बच्चा हो जाता है तो कुछ दिन के लिए परिवार के दो एक सदस्य, अपने किसी पड़ोसी की शरण में जाते हैं जो अपनी उतनी ही बड़ी कोठरी में उनके लिए जगह करने में समर्थ भी हो जाता है, जगह दिल में होनी चाहिए इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण यहाँ के रहनेवाले हैं।

लोग अधिकतर अपने साहबों की नौकरी-चाकरी में उनके मकानों

अथवा दफ़्तरों में रहते हैं। दोपहर को पेट भरने आते हैं और रात को सोने। खाने के समय लड़कों-बच्चों में जो चिल्लपों मचती और भीषण संग्राम होता, एक-एक टुकड़ा रोटी के लिए जो छीना-झपटी, मार-पीट और कटाजुज्झ होता था, उसे देखकर यथार्थवाद अपने को इस स्तर से काफ़ी ऊँचा उठा लेता था, तब कहीं उसकी जीवन रक्षा हो पाती और कोई पढ़ा-लिखा आदमी उसे पहचान पाता। उस दशा का सच्चा चित्र खींचने की सामर्थ्य तो कोई भीषणवाद ही शायद कर सके। ज़रूरत पड़ने पर लोग एक दूसरे के यहाँ खाने-पीने में हिचकते न थे, उनका जाति-बन्धन इसमें बाधक न होता था। शायद परिस्थितियों ने उन्हें यह सब सिखा लिया था। जो नये लोग उच्च जाति के आते थे वे एक दूसरे को यह कह-कहकर सन्तोष देते थे कि भैया, परदेश में, फिर फौज की नौकरी में धर्म की रक्षा कैसे हो सकती है, पर धीरे-धीरे यह विचार भी उनके मन में न आता था।

भगवान का नाम लेने की फ़ुर्सत किसी को न मिल पाती थी। सुबह जो इसके लिए शुभ समय समझा जाता है उसमें अक्सर बम्बे पर पानी भरते समय किसी न किसी में लड़ाई छिड़ जाती थी, जिसमें कुछ लोग एक तरफ और कुछ दूसरी तरफ होकर बड़े उत्साह से भाग लेते हुए मालूम होते थे। एक से एक चुनी हुई गालियों की चाँदमारी होती थी। थोड़ी देर के लिए एक कोहराम-सा मच जाता था। सब लोग कुछ न कुछ चिल्लाते अवश्य थे, हर एक इतना कहना चाहता था कि उसे दूसरे की सुनने की फ़ुर्सत न मालूम होती थी, शायद इसीलिए लड़ाई होने के बाद उसका प्रभाव कुछ चिरस्थायी न रहता था। वे एक दूसरे से जल्दी ही हँसने-बोलने लगते थे। दिन भर मालिकों की गालियां और ठोकरों को खाते रहने के बाद कभी-कभी उनकी भी तबियत जैसे किसी पर ताव दिखाने या गाली देने की होती थी और इसीलिये जब लड़ाई हो जाती थी तो मानों उनमें का जमा हुआ गर्द-गुबार धुएँ की तरह बाहर निकलकर उनकी तबियत को कुछ हल्की कर देता था। इस छोटी सी बस्ती में जीवन का संचार ऐसे ही अवसरों

पर दिखाई देता था अथवा जब कोई अपने साहब के गिलास की बची हुई ब्रान्डी झाड़ आता था या महीने भर के खर्च की परवाह किये बिना तनख्वाह मिलने पर होली से ताड़ी पीकर घर आता और बीवी बच्चों को मारता हुआ अपने मस्त होने की सूचना देता था। साधारण परिस्थिति में तो लोग बात करने तक की फुर्सत न पाते थे, साहबों के फटे-पुराने पैबंद लगे हुए कपड़े पहने, श्रीहीन मुँह लिए, घबड़ाए हुए आते और खा-पीकर फिर लौट जाते थे। दिन भर स्त्रियों और बच्चों का राज्य रहता था। स्त्रियाँ कुछ काम करती हुई मुँह बिचका कर एक दूसरे की बुराई करती, लड़ती-झगड़ती, आँसू बहाती, या कोसती थीं। लड़के गन्दे चिथड़े पहने हुए माँ-बाप की नक़ल करते हुए गाली बकते, पेड़ों की टहनियाँ तोड़कर खेलते, नाले में पत्थर फेंकते पेड़ों पर चढ़ते, निमकौड़ी खाते या माँ के पास रोते हुए जाकर एक दूसरे की शिकायत करते थे।

उन लोगों में परस्पर कितनी सहानुभूति थी, एक दूसरे का कितना ख़याल था इसका पता तभी लगता था जब उनमें से किसी पर वास्तव में संकट पड़ जाता था, या कोई मृत्यु हो जाती थी। आपस के सारे लड़ाई-झगड़ा और कहा-सुनी को वे ऐसे समय भूल जाते थे। एक बार शहर के किसी राय साहब ने यहाँ के एक ख़ानसामा को साइकिल से उनके टीन का घी गिरा देने के अपराध में पकड़ कर बैठा लिया था, इस पर इस बस्ती के सब लोग किस भयानक ढंग से वहाँ इकट्ठा होने लगे थे इसका अन्दाज़ किसी एक बन्दर के घिर जाने पर जैसे शहर भर के बन्दर उस अपराधी मकान को घेर लेते हैं, उसी से शायद कुछ हो सके। बेचारे रायसाहब को ख़ानसामा को छोड़कर जान बचाकर खिसक जाना पड़ा था। इस बस्ती में किसी के यहाँ ग़मी हो जाती फिर एक भी आदमी बेढब से बेढब साहब का नौकर होने पर भी वहाँ न टिकता था, जरा से बच्चे की ग़मी में भी सब आदमी जाते थे, दुखित परिवार के यहाँ खाना बना-बनाकर भेजते, उन्हें ज़बर्दस्ती खिलाते और सच्चे हृदय से धीरज बँधाते थे। फिर भी दूसरों से कहते थे—'बड़ा

भाग्यवान था वह जो मर गया, सारे संकटों से छुटकारा पा गया। हम लोगों की इस ज़िन्दगी से तो मौत ही अच्छी है, भगवान हमारा भी यह दिन जल्दी ही आये।"

* * *

नाले के ठीक ऊपर दूसरी ओर हिन्दुस्तानी साहबों के बँगले और बाबुओं के क्वार्टर हैं जिनके आगे अंग्रेज़ साहबों के बँगले हैं। हिन्दुस्तानी साहब और बाबू वे जीव हैं जो अपनी गिनती सभ्य और सुशिक्षितों में करते हैं। नाले के पार रहनेवाले उन अपने देशवासी भाइयों की गिनती असभ्यों और नीचों में करते हैं, पर आज का सभ्य कहलानेवाला संसार इन दोनों की ही गिनती असभ्यों में करता है। शायद इसीलिये कि वे एक दूसरे को आपस में ही नहीं समझ पा रहे हैं। तब उन्हें बुद्धियुक्त कोई कैसे बतावे? बाबुओं के उन क्वार्टरों और बँगलों में पश्चिम की हवा ज़्यादा चलती है। वे सूट-बूट ही पहनते हैं, बहुत से काँटे-छुरी से खाना खाकर ही अपने को अधिक फ़ारवर्ड सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। कोई-कोई साहबों की तरह अपनी ही भाषा को बिगाड़कर बोलने की सामर्थ्य रखते हैं और तदनुसार तुम को टुम, जानता को जानटा बोलते और अपने नौकरों को अपने से अधिक रंग साफ़ होने पर भी काला आदमी कहकर डाँटते हैं। किसी-किसी ने अंग्रेज़ी में ही लिखने का व्रत ले लिया है, अपने लड़के और बाप तक को अंग्रेज़ी में पत्र लिखते हैं और जब कभी दुर्भाग्य से हिन्दी लिखने का मौक़ा पड़ जाता है तो बग़लें झाँकने लगते हैं। फिर बेशर्मी से भाषा को रद्दी कह देते हैं। किसी-किसी ने शराब की आदत भी डाल ली है। साहबों के बीच में अपने को एडवान्स्ड सिद्ध करने के लिये। कोई-कोई अपने महाप्रभुओं के उस प्रसाद को भी खाने से नहीं हिचकते जिसके पीछे हिन्दू और मुसलमानों में दुश्मनी चलती है। अपने साहबों पर उन्हें बड़ी श्रद्धा और प्रेम है, उनके कुत्ते तक का आदर करना वे अपना धर्म समझते हैं, पर उनमें से अधिकतर अपनी पत्नियों से असन्तुष्ट हैं क्योंकि वे अपनी हिन्दुस्तानी हरकतों से बाज़ नहीं आतीं।

बड़ी मुश्किल से कोई-कोई लिपस्टिक लगाना, नाखून बढ़ाना और ऊँची एड़ी का जूता पहनना सीख पाई हैं। ईश्वर का भजन भी उनका पुराने ढंग पर ही चल रहा है, घर में पीतल की मूर्तियाँ उसकी प्रतीक हैं और घर के बाहर एक छोटा-सा देवालय, जिसके पुजारी एक पंडितजी का भी वे भरण-पोषण कर रही हैं। इस धर्म में और उनके भगवान के मन्दिर में बाबू लोगों का कितना विश्वास है यह तो कहा नहीं जा सकता, पर कभी-कभी ये बाबू लोग मन्दिर की मूर्ति के आगे जाकर बुदबुदाते हैं। कोई शायद दूसरे जन्म में अंग्रेज़ होने की कामना करता है तो कोई अपने दफ़्तर के हेडक्लर्क की आयु को भगवान से घटाने की प्रार्थना करता है, जिससे उसकी जगह पर वह स्वयं नियुक्त हो जाय, भगवान के पुजारी पण्डितजी का वे काफी आदर करते हैं। उनके शादी-ब्याह पण्डितजी की बिचारी सायत और उनकी बताई हुई विधि के अनुसार ही होते हैं, एकाध तो इतने श्रद्धालु हैं कि दफ़्तर के किसी प्रतिद्वन्दी बाबू की शिकायत करने तक के लिए शुभ घड़ी पूछ लेते हैं।

सच बात तो यह है कि पण्डितजी हैं भी इस श्रद्धा के योग्य। संसार के सब प्राणियों को एक दृष्टि से देखते हैं, यहाँ तक कि घर की महरी को अपनी स्वर्गीया पत्नी के सम स्थान दिये हुए हैं। विद्वान भी वे बड़े हैं, मामूली बोली के सब शब्दों को 'बिन्दु मात्रेण संस्कृतं' के अनुसार संस्कृत बना लेते हैं, सफ़ाई और छूत-छात का भी उन्हें बड़ा ध्यान है, दिन में दो बार स्नान करते हैं, बला से उनके जनेऊ में मैली कोई चीज़ आपको नहीं मिल सकती। नाले के उस पार रहनेवाले उन नौकरों से बे बाबुओं से अधिक घृणा करते हैं और उन्हें पशुओं से भी नीचा समझते हैं।

वास्तव में पण्डितजी श्रद्धा के योग्य थे- उनका एक-एक कर्म शास्त्रोक्त था।

प्रारम्भिक शरद की चाँदनी रात थी, जाड़ा गुलाबी कहलाने लायक़ होने लगा था। बाहर सोने लायक़ अब नहीं रह गया था, हवा सुहावनी प्रतीत होने के बदले तीखी लगने लगी थी। नौकरों की बस्ती में अभी

स्त्रियाँ अपने पतियों की प्रतीक्षा कर रही थीं, दो एक दरवाज़े की चौखटों पर बैठी थीं, कुछ सामने लगे हुए बरगद के पेड़ की छाया में कुछ ओढ़कर बैठ गई थी क्योंकि लड़के खा-पीकर, लड़-झगड़कर और रोकर सो चुके थे। बातचीत चल रही थी, बड़ी हँसी हो रही थी क्योंकि आज उनके हिसाब से एक बड़ा दिलचस्प वाक़िया हो गया। मामला कुछ यों था कि आज एक मर्दुमशुमारीवाला यहाँ आया था और उसने पूछ-ताछ की थी कि हर कोठरी में कितने आदमी रहते हैं, और उसे ताज्जुब हुआ था कि एक एक कोठरी में पाँच-पाँच जीव बन्द हो जाते थे। डेढ़ सौ गज़ लम्बी कोठरियों की इन दो क़तारों में लगभग पाँच सौ आदमी रहते थे। उसे इन लोगों की बात पर विश्वास ही नहीं होता था। बड़े-बड़े शहरों को गर्व रहता है कि उनके ऐसी घनी आबादी कहीं नहीं होती पर वह घनापन यहाँ पानी भरता हुआ मालूम होता था। वह समझा हिन्दू-मुसलमानों में जो अपनी-अपनी जनसंख्या बढ़ाने की होड़ चल रही है शायद यह उसी का परिणाम है, पर बहुत कुछ तहक़ीक़ात करने पर भी जब उसे इन्हीं लोगों की बात सही मालूम हुई तो वह ताज्जुब करता हुआ चला गया। उस तहक़ीक़ात के बीच में स्त्रियों से जो प्रश्न हुए थे वही इस मनोरञ्जन का साधन हो रहे थे।

एक ने पूछा—हाँ, तो वह तुझसे क्या बोला ?

'कहने लगा इस कोठरी में कुल कितने आदमी रहते हैं ?' मैंने कहा छः। 'झूठ', वह बोला। 'वह सब कहाँ रहते हैं ?' 'इसी कोठरी में।' 'कौन-कौन हैं ?'—मेरा ससुर, सास, देवर, मैं और मेरा लड़का।' 'सोते कहाँ हैं सब ?' 'तुमसे मतलब ?' मैंने कहा। 'बतलाना होगा, नहीं चालान हो जायगा'—वह बिगड़ा। मैंने कहा—'इसी कोठरी में सब सोते हैं।' 'फिर झूठ बोली'—वह चिल्लाया। 'झूठ बोलती हूँ तो रात को तुम आकर खुद देख जाना'—मैंने भी गुस्से से कहा। वह बड़ी देर तक आँख फाड़-फाड़कर कोठरी देखता रहा, खड़ा-खड़ा कुछ सोचता रहा फिर सिर झुकाए चला गया।'

इस पर बड़ी ज़ोर से ठहाका लगा, सबने ही इस घटना का आनन्द

उठाया, इतने ही में काफी दूर पर चलता हुआ कोई ज़मीन पर गिर पड़ा। औरतें चिल्लाकर बोलीं—'देखो वह कौन गिर पड़ा ?'

'कोई दारू पीकर आया होगा'—एक बोली।

सभी ने यही अन्दाज़ा लगाया। वे लोग नाले की तरफ बढ़ीं तो आश्चर्य में पड़ गईं, 'यह तो कोई औरत है।'

पास में जाते ही एक चिल्लाई—यह तो पुजारीजी की चम्पा है।'

'पुजारीजी की कौन है ?' एक नई बहू ने पूछा।

'लड़की।'

'वही जो तिउरुस विधवा हो गयी थी ?'

'हाँ, हाँ, वही।'

'मगर यह तो मूर्छा में है।'—पास में बैठती हुई एक बुढ़िया बोली, फिर वह चिल्ला पड़ी—'मगर यह तो पेट से है।'

'पेट से है ?' सब मानों आसमान से गिर पड़ीं।

'हाँ, हाँ, और पूरे दिन मालूम होते हैं।'

'यह तो बड़ा ग़ज़ब हुआ।'—एक बोली।

एक कहारिन ने पानी लाकर उसके मुँह पर छिड़का तब वह होश में आई। उसके आँख खोलते ही एक बोली—'तुम्हें पुजारीजी के यहाँ पहुँचा दें ?'

इस प्रश्न के होते ही वह रोने लगी—'उन्होंने तो घर में घँसने तक न दिया, अभी रात को ससुराल से आई थी, सीढ़ी पर पैर नहीं रखने दिया। कहने लगे देवस्थान अपवित्र हो जायगा।'

'अब कहाँ जाओगी ?'—एक ने प्रश्न किया।

'कहाँ जाऊँ, कहीं भी तो ठिकाना नहीं है, अगर तुम लोगो में से कोई दया करे।'

'हम लोगों के यहाँ रहोगी ?'—वे आश्चर्य से एक दूसरे का मुँह ताकने लगीं। फिर उसे अपने साथ कोठरियों की ओर ले चलीं।

एक कोई आज कहीं से शराब पी आया था, कोठरी में बीवी को न पाकर खड़ा-खड़ा पैंतरे बदल रहा था, इस झुण्ड में उसे आते देख-

कर बोला—कहाँ गई थी हरामजादी ?'

'ऐ भलेमानुस, अपनी भलमंसाअत मत दिखा। सूझता है कौन आई है ? वह अपनी लाल आँखों से कुछ देखकर संयत होने की कोशिश करने लगा। औरत ने उसे सब समझाया, फिर बोली—'मैं उसे अपनी कोठरी में रख लूँ ?'

'हाँ-हाँ'—वह बोला। फिर जाकर उसने चम्पा के पैरों पर सिर रख दिया, 'तुम मेरी धरम की बहन हो'—वह बोला—'जब तक तुम्हारा जी चाहे यहाँ रहो, मैं भूखा रहूँगा, नंगा रहूँगा, पर तुम्हें तकलीफ़ न होगी, तुम बेखटके यहाँ रहो, मेरी बहन। हम दोनों भाई झब्बू की कोठरी में सो रहेंगे, तुम और मेरी घरवाली इस कोठरी में सोना। उसने फिर चम्पा के पैरों पर सिर रख दिया, 'तुम मेरे ही यहाँ रहो।'

चम्पा उसकी बातों पर रो पड़ी, फिर उसकी स्त्री के साथ कोठरी में चली गई -

इस बस्ती के जिन-जिन लोगों ने शराबी रामू के साहस की यह बात सुनी उन्होंने उसकी पीठ ठोंकी और पूरी सहायता की।

उसी के दूसरे दिन सबेरे, लड़के धूप खाते हुए नाले में ईंटें फेंक रहे थे कि पण्डितजी नाले का पुल पार करते हुए निकले। लम्बा-चौड़ा टीका लगाये हुए साधारण साफ़-सुथरे। वे अपनी उसी महरी की, जो उन्हें विधुर होने से बचाए हुए थी, फ़र्मायश की कोई चीज़ लेने जा रहे थे। उनके मन में इस बात की ज़रा भी चिन्ता न थी कि भरी रात में उस दशा में चम्पा को जो उन्होंने निकाल दिया है कहाँ गई होगी, कैसी होगी। वे उपहार खरीदने के उत्साह में थे। उस पतिता के बारे में चिन्ता करना भी वे अधर्म समझते थे। पण्डितजी की दृष्टि उन लड़कों पर पड़ी, मैले कुचैले, उनमें से एक नाले में बहकर आते हुए एक सड़े सन्तरे को, जो शायद किसी बाबू ने फेंक दिया होगा—छीलकर खाने लगा था, पेट की ज्वाला ने उसे धोने तक का धैर्य न दिया था। पंडित जी ने यह देखा और वे ज़मीन पर थूककर बोले—'नरक के कीड़े।'

उल्लू आदमी

किसी शरीफ आदमी को उल्लू कह दीजिये तो आपके सिर हो जायेगा—सिर क्या हो जायगा, जिन्दगी भर के लिये आपका दुश्मन हो जायगा और अगर कोई यह सुन भी लेगा तो वह आपकी गिनती बिना सोचे-समझे असभ्यों में करने लगेगा। लेकिन गरीबी ऐसी जालिम है कि दिन-रात उठते-बैठते यही उल्लू का सम्बोधन सुनवाती है, और वह भी इस हद तक कि सुननेवालों को यही सहज स्वाभाविक मालूम होने लगता है।

मालिक कहते हैं—'अबे ओ उल्लू!' नौकर 'हुजूर' कहता, खीसें निपोर, उसी तरह प्रसन्नता से हाजिर हो जाता है जैसे मैनेजर के मिस्टर कहकर बुलाने पर कोई क्लर्क, अपने को मन ही मन न जाने क्या कुछ समझता हुआ, यस सर कहकर अटेन्शन (सावधान) हो जाता है।

रोजी का सवाल बड़ा टेढ़ा है। उल्लू कहलाने की तो बात ही क्या, रोजी का मसला मनुष्य को उल्लू बनकर जीवन व्यतीत करने को मजबूर करता है। बेचारा यह उल्लू-आदमी रात को जागता, दिन को सोता और रात को बोलता तथा दिन को चुप रहता है। शायद आपकी समझ में आ गया हो कि यह उल्लू-आदमी वास्तव में कौन है—वह है आपका पहरेदार।

जब आप रात में सोते हैं तो पहरेदार आपके जान और माल की रखवाली करता है। जाड़े की रात है। ठण्ड ऐसी कड़ाके की पड़ रही है कि बदन का कोई हिस्सा आपको अपने गरम लिहाफ से बाहर निकालना कठिन मालूम होता है। ऐसे समय में भी आप यह जानने को परेशान रहते हैं कि एक फटा-पुराना सलूका पहने, तार-तार हो रही चादर ओढ़े जो पहरेदार आपने नियत किया है वह अपनी ड्यूटी ठीक से बजा रहा है या नहीं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि वह आपके मकान के आस-पास चक्कर लगाने के बदले बरामदे में बैठकर खाँसे से बचने

का प्रयत्न कर रहा हो। मूसलधार पानी बरस रहा है, पर इससे क्या, चौकीदारी के माने यह तो नहीं हैं कि वह पानी से बचने के लिए एक जगह छाया में बैठा रहे। उसे तो आपकी सम्पत्ति की रक्षा करनेवाली उन दीवालों के आस-पास चक्कर लगाना ही चाहिये। यदि उसके पास छाता नहीं है तो आप इसके जिम्मेदार नहीं। आपतो उसे तनख्वाह के पूरे दस रुपये देते हैं। आपकी उससे छाते की नहीं, चौकीदारी की ठहरी थी। आपको तो चौकीदारी चाहिये। चाहे किसी के दया कर दिये हुये टूटे-फटे छाते को लेकर वह करे चाहे बोरा ओढ़कर और चाहे नंगा भींगकर। चूंकि आप मजूरी देते हैं इसलिए आपको तो अपने काम से मतलब है और यह आपकी आदत है कि कर्त्तव्य-विमुख आदमी को देखकर आपकी हड्डी जल जाती है। यदि यह काम ठीक नहीं करेगा तो आप दूसरा रख लेंगे क्योंकि ऐसे न जाने कितने मारे-मारे फिरते हैं।

हजारों आदमी इसी पहरेदारी के द्वारा अपना पेट पालते हैं। उनमें न जाने कितने प्रतिवर्ष ठंड और बरसात झेलने के कारण निमोनिया का शिकार होकर जीवन के झंझटों से छुटकारा पा जाते हैं। लेकिन इन सब बातों की परवाह किसे है।

वैसे तो बहुत से लोग यह काम कर लेते हैं, पर पहाड़ियों ने तो जैसे इस देश में पहरेदारी का ठेका ले लिया है। उनमें कुछ अच्छाइयाँ हैं जिनके कारण उन्हें यह काम खूब मिलता है और वह उसे खूब अच्छी तरह करते भी हैं। वह अक्सर ईमानदार और कर्त्तव्य-परायण होते हैं, चोरों से मिलकर चोरी नहीं करवा देते और देशी पहरेदारों की तरह मौका पाकर पाकर रात को घंटा दो घंटा सो नहीं जाते।

जगमोहनसिंह एक ऐसा ही नैपाली पहरेदार है। नैपाल के एक छोटे-से गाँव में उसका घर है। घर पर उसकी पत्नी और दो छोटे-छोटे बच्चे उसके भेजे हुए चन्द रुपयों पर बसर करते हैं। मनीआर्डर के कूपन में ही—मैं अच्छी तरह हूं, तुम सब भी अच्छी तरह रहना—यह लिखवा दिया करता है। उसकी पत्नी इस चिट को हृदय से लगाकर अपने जी को ढाढ़स दिया करती है।

दूर देश में पड़ा हुआ यह पार्वतीय चौकीदार अकसर रात को जाड़े में ठिठुरता अपने गाँव के उस मनोहर वातावरण में जा पहुँचता है। उसे ऐसा मालूम होता है जैसे वह अपने गाँव में पहुँच गया है। इधर-उधर आते-जाते लोग उससे प्रसन्न होकर राम-जुहार करने लगे हैं। कल्पना में वह देखता है कि उसकी प्रतीक्षा में पीली पड़ी उसकी पत्नी उसे देखकर खिल उठी है। पत्नी का ध्यान कर उसकी आँखों में प्रसन्नता के आँसू झलकने लगते हैं।

एकाएक वह अनुभव करता है कि पंचवर्षीया लड़की उसके पैरों में आकर लिपट गई है और पूछती है—तुम इतने दिनों बाद क्यों आये। उसके पैरों में और जोर से चिपककर कहती है—मैं तुमसे नहीं बोलूँगी। मा की गोदी से उतर कर उसका छोटा बच्चा खुशी से ताली बजा उठता है।

तभी उसके मालिक, जो कानपुर के एक बहुत बड़े रईस है, गरज उठते हैं—"पहाड़ी आज आवाज नहीं लगा रहा है। सोता है क्या ?"

सड़क के बीचोंबीच ओम में खड़ा पहाड़ी चौंक उठता है—"नहीं हुजूर।"

सेठ जी की नाराजी का भय उसके मन में छा जाता है। जोर जोर से जूते पटकता, जागते रहो कहता, टहलने लगता है। कभी उसकी आँखों में छोटे-छोटे पैरों से चलती हुई लड़की आ जाती है और कभी मा का दूध पीना छोड़कर उसकी ओर ताकते हुए प्रसन्नता से दीप्त नेत्र और दूध से भींगे ओंठ। तभी कोई शराबी लड़खड़ाते पैरों से उसकी ओर आता हुआ उसे अपने कर्त्तव्य की ओर सजग कर देता है।

जीवन के आठ साल इसी तरह बीत गये हैं। अठारह साल की उम्र में वह यहाँ आया था। अब वह छब्बीस का है। इन आठ सालों में तीन बार ही उसे अपने घर जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वहाँ का जीवन उसके लिए स्वप्न की एक चीज़ बनकर रह गया है।

* * *

कानपुर में भीषण दङ्गा हो रहा है पढ़े लिखे विद्वान्, मौलवी,

पण्डित, नवाब और रईस उसकी तह में हैं। अशिक्षित हिन्दू और मुसलमान दोनों ही ईश्वर और अल्लाह का नाम लेना अपना धर्म समझते हैं। पर उनके पुरोहित तथा उनके धर्माधिकारी न जाने उन्हें किन-किन बातों का ज्ञान कराते है और उनके वास्ते खून बहाने की शिक्षा देते हैं। बे-पढ़े मजदूर अपने राजनैतिक व नागरिक अधिकारों से अनभिज्ञ हैं। उनके नेता उन्हें इसके लिये जान लेने को उकसाते हैं। गरीबों को गरीबों से, अशिक्षितों को अशिक्षितों से कोई विरोध नहीं, पर उन्हें इसके लिए रुपये दे-देकर तैयार किया जाता है। पैसे दे-देकर उनकी जिन्दगी मोल ली जाती है और उनकी समझ में भी यही ठीक लगता है कि भूखे मरने के बदले धर्म और जाति के नाम पर मरना कहीं अच्छा है।

सेठ जी के धन और सम्पत्ति के शत्रु भी शहर में कम नहीं हैं। कुछ गुण्डा तबीअत रईसों ने उनका घर लुटवा देने की सोची है। पर सेठ जी उनकी साजिश से अनभिज्ञ हैं। आजकल दंगा होने के कारण नेपाली की ड्यूटी चौबीसों घंटों की रहती है और वह इस पर काफ़ी सतर्क रहता है। दिन में जब कभी बहुत अमनचैन मालूम होती है तो वह घंटे दो घंटे को कोठी के फाटक से टिक कर आँख लगा लेता है। इतनी कड़ी ड्यूटी के बदले में उसे सुबह-शाम दो-चार रोटियाँ, बहुत अहसान जताते हुये, देदी जाती हैं, जिनसे वह अपना पेट भर लेता है।

* * *

रात्रि के अभी ग्यारह ही बजे होंगे कि नैपाली को बड़ा हुल्लड़ सुनाई दिया। मशालें लिये हुये एक दल का दल बड़े भयानक रूप से चिल्लाता हुआ उस कोठी की ओर बढ़ता चला आ रहा था। एक आदमी ने आकर खबर दी—"इसी कोठी पर धावा है। होशि छोटे जाओ।"

नैपाली ने सेठ जी को आवाज दी—"एक आदमी कह गया है कि यह झुण्ड अपनी कोठी पर धावा करने आ रहा है। मेरे लिये क्या हुकुम है?"

सेठ जी की कोठी के दरवाजे-खिड़कियों की तो बात ही क्या एक-एक छेद बन्द था। उन्होंने गरज कर तुरन्त उत्तर दिया—"हुक्म क्या पूछता है नमकहराम! इसी दिन के लिए तो तुझे बरसों से पाल रहा हूँ। इतनी तनख्वाह क्या खाली गत में हो-हो करने की देता रहा हूँ। आज मौका है, मेरा नमक अदा कर, अगर यहाँ से हटकर गया तो काले पानी भिजवा दूँगा—याद रखना?"

नैपाली गिड़गिड़ाया—"पर मैं अकेला हू और वे बहुत है हुजूर।"

सेठ जी अब तक अपनी जगा-सी उकसाई हुई खिड़की की सन्ध बन्द कर चुके थे। उन्हे अपनी कोठी की मजबूती पर विश्वास था। चहारदिवारी का फाटक लोहे का था। उसे तोड़ना सभव नहीं था और पहाड़ी के लिए उन्हे विशेष चिन्ता न थी।

गुण्डे आ गये। उनकी संख्या देखकर पहाड़ी घबड़ा गया। उसने अपनी नंगी खुखड़ी हाथ मे ले ली और सेठ जी से चिल्लाकर कहा—"आप अपनी बन्दूक मुझे दे दीजिये। आदमी बहुत हैं। मेरी जान खतरे में है।"

सेठ जी वहीं से बोले—"बन्दूक मैं कैसे दे सकता हूँ। मैं फँस जाऊँगा। पुलिस मुझी को दोषी ठहरायेगी।"

नैपाली चिल्लाया—तब मैं भाग जाऊँगा।"

"भागकर कहाँ जायगा, नमक हराम! तुझे काले पानी भिजवाकर ँगा।"

नैपाली पर सेठ जी की धमकी का कोई असर न हुआ। वह जानता था कि अपनी जान बचाकर भागना ऐसा कोई दोष नहीं है। उसने र के मोह ने उसे भागने को उकसाया, पर कर्त्तव्य-परायणता ने उ वह जमकर खड़ा हो गया। चहारदिवारी पर चढ़ने का त्न करनेवाले एक गुण्डे को वह हटाने बढ़ा कि उस पर पाँच-सात एक साथ झपटे। खुखड़ से वह उनसे लड़ने लगा। लड़ते लड़ते वह ल्लाया—"मुझे बन्दूक दे दीजिये सेठ जी तो मैं अभी इन्हे यहाँ से । नहीं तो मेरी जान जाती है।"

नैपाली की आवाज़ गूँज कर ही रह गई। उसको कोई उत्तर न मिला। सेठ जी ने कोतवाली को टेलीफोन कर दिया—"मेरी कोठी पर हमला हुआ है। जल्दी आइये।"

पहाड़ी बहुत देर तक लड़ता रहा। छुरी के घाव उसके लगते रहे, पर उसने भागने तक का प्रयत्न नहीं किया। जब लड़खड़ाकर वह गिरा तो उसकी बन्द होती आँखों में एक बार अपनी गाँव की झोपड़ी के वे सुखद दृश्य फिर आ गये। आततायियों ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

इतने ही में पुलिस की लारी दूर से दिखलाई पड़ी। किराये के गुण्डे अपनी-अपनी जान लेकर भाग निकले। दारोगा जी ने नैपाली की लाश देखकर तहकीकात शुरू की। एक पड़ोसी ने जब यह बताया कि वह किस प्रकार बन्दूक के लिए चिल्लाते हुए लड़ता-लड़ता मारा गया, तो दारोगा जी बोले—"बड़ा उल्लू था साला, भाग क्यों नहीं गया!"

दीवाली के दीये

होली-दीवाली की बहार तो बचपन के साथ हवा हो गई, अब तो लकीर पीटना रह गया है। पहले हर उत्सव के लिये कितना उत्साह रहता था, महीनों पहले से उसके आगमन की प्रतीक्षा की जाती थी, तैयारियाँ होती थीं, लेकिन अब...!

मध्यप्रदेश के खँडवा में बचपन बीता था। वैश्यों और जैनों की उपस्थिति और व्यापार की उन्नति के कारण खँडवा शहर बन गया था। खँडवा में दीवाली काफी उत्साह से मनाई जाती थी। हम लोगों के लिये सबसे बड़ा आकर्षण था पटाखे छुड़ाने का। एक-एक लड़का दो-दो तीन-तीन रुपये के पटाखे छुटा डालता था। हम लोग भी अपने घरवालों की स्थिति न समझ सकने के कारण जिद करते और ज़्यादा से ज़्यादा पाने की कोशिश करते।

आनन्द तब तक ही रहा जब तक समझ न आई। जैसे ही समझ आई, उत्तरदायित्व बढ़ने लगा। उत्तरदायित्व और आनन्द दोनो विपरीत भावनायें हैं। अब तो सब कुछ अपने सिर पड़ा है। हमारी समझदारी ने हमारा सारा मजा किरकिरा कर दिया है।

सरकारी नौकरी के फेर में घर-बार और परिवार छोड़कर हरदोई में आ बसा था। तभी दीवाली आई। यह बड़ा कस्बा भी एक बार दीपकों से आलोकित हो अपने स्वाभाविक अन्धकार को दूर करने का प्रयत्न करने लगा। मेरे हृदय में उत्साह का स्थान उदासी ने ले रखा था। कहाँ परिवार के इतने आदमी एक साथ आनन्द मनाते थे, सारा घर रोशनी से जगमगा उठता था, लेकिन आज मुझे ऐसा मालूम हो रहा था कि रोशनी दियों से नहीं, आदमियों से होती है। तभी तो इतने दिये जला देने पर भी मेरा घर अँधेरा-अँधेरा ही लगता था।

पड़ोस के एक लड़के ने आकर कहा—"आप जितने दिये बाहर चबूतरे पर रख आये थे, लड़के उठाये लिये जाते हैं।"

"दियों को ले जाकर क्या करेंगे वे?"

"खेलेंगे, और क्या करेंगे!"

मैं बाहर आकर खड़ा हो गया। पड़ोसवाले हकीम जी और दो-एक सज्जन भी खड़े थे। हम लोगों के घर के ठीक सामने एक हलवाई ने दूकान खोली थी। बातचीत यह हो रही थी कि इस हलवाई ने आज कैसी कोकोजम की रद्दी मिठाइयाँ बना रखी हैं। झूठी गवाही खाने-वाले झब्बूलाल और नित्यप्रति रिश्वत लेनेवाले पेशकार भी उसकी निन्दा करने में पीछे न थे। तभी कोई चिल्लाया—"देखो, देखो, वह दिये लिये जाता है!"

कई आदमी दौड़ पड़े। सबसे आगे मैं था। लड़के की तेजी या अपना भारी भरकमपन, जो भी हो, देखकर सभी एक के बाद एक रुकते गये—दौड़ता गया केवल मैं। सामने भागे जानेवाले लड़के ने मुझे बड़े चक्कर दिये, पर मैं हताश न हुआ। मेरी और उसके बीच की दूरी धीरे-धीरे कम हो रही थी—यहाँ तक कि मैं बिलकुल पास आ

गया। लड़का भड़भड़ाकर एक मकान के दरवाज़ों को चौपट खुला छोड़ तेज़ी से अन्दर घुस गया।

तब जरा मैं रुका। मैंने देखा कि मैं भागता हुआ, हरदोई के एक ऐसे मोहल्ले में आ गया हूँ जहाँ दीवाली का कोई चिह्न नहीं दिखलाई पड़ रहा है। दूर पर कहीं एक-आध दिये चमक जाते हैं जो अन्धकार को दूर करने में असमर्थ सिद्ध हो रहे हैं। दीवाली के नाम पर यहाँ सफाई भी, ऐसा मालूम होता है, बिलकुल नहीं हुई है। चारों तरफ से सड़ाँयध और दुर्गन्ध आ रही थी।

मैं उस घर में घुस गया। उसकी निरी जर्जर दशा का वर्णन मैं न कर सकूँगा। सामान के नाम पर मकड़ियों के जाले और कूड़ा-करकट ही था। चारों तरफ दरिद्रता का साम्राज्य था। आँगन में तीन-चार दिये रखे हुए थे। उनमें से दो जल रहे थे और दो बुझे हुये थे। निकट ही एक आठ-नौ बरस की लड़की और दस-ग्यारह बरस का लड़का बैठे हुए थे। उनके सामने जाकर खड़ा हो गया मैं।

मुझे देखते ही लड़का भागकर पास की कोठरी में छिप गया, पर लड़की उठी और मेरे पैरों से लिपट गई। उसने एक ही साँस में कहा—"बाबू जी, हम बे-मा-बाप के लड़के हैं। आप मेरे भाई को न पकड़िये। मैं अकेली रह जाऊँगी। वही मुझे माँगकर खिलाता है। आप उसे पकड़ा देंगे तो हम लोग अलग-अलग कैसे रहेंगे बाबू जी। मैं भूखी मर जाऊँगी। उसकी गलती नहीं है बाबू जी। मैं थोड़ी देर पहले शहर में गई थी। वहाँ की रोशनी और जगमगाहट देखकर मेरी भी तबियत हुई कि अपने घर के सामने दिये जलाऊँ। तभी मैंने अपने भाई से कहा कि कहीं से दिये ले आओ। वह आपके दिये उठा लाया। उसकी गलती नहीं है बाबू जी, गलती मेरी ही है, आप मुझे जो चाहें...।"

मेरे मुँह से निकला—"नहीं, गलती तुम्हारी भी नहीं है...!"

मैं उस घर से बाहर निकल आया। मेरा मन कहता था—'गलती तो उन उजाला करनेवालों की है जो अपनी जगमगाहट दिखाकर उन्हें

उनके अभावों का ज्ञान कराते हैं और उन्हें ऐसे कार्य करने की अप्रत्यक्ष रूप से प्रेरणा देते हैं।

मैं घर की ओर कदम बढ़ाये चला जा रहा था। मैंने देखा कि अन्धकार से आच्छादित यह मोहल्ला उजले मोहल्लों से बहुत बड़ा है। ऐसा प्रतीत होता था कि इस मोहल्ले का कभी अन्त न होगा। एकाएक मैंने अनुभव किया कि जब अँधेरा इतना ज्यादा है और उजाला इतना कम है तो कहीं ऐसा न हो कि यह अँधेरा इस उजाले को खा जाय!

'नास्तिक'

मिल और उसके क्वार्टरों की स्थापना होते ही उस जंगल में भी मंगल हो गया। जहाँ कुछ दिन पहले लोग दिन दहाड़े लूट लिये जाते थे, वही स्थान चौबीसों घंटे शोर-गुल से भरा रहता। बिजली के कारण रात वहाँ दिन में परिणत कर ली गयी थी और रात दिन काम होता रहता था। मिल से भी ज्यादा चहल पहल उसके क्वार्टरों में दिखलाई देती थी। वह निर्जन एकदम रव से परिपूर्ण हो उठा था। ऐसा मालूम होता था जैसे आदी न होने के कारण इस भार को वह वहन नहीं कर पा रहा है। क्वार्टरों में मुंह अँधेरे से ही लोग जाग पड़ते, स्त्रियाँ उठ कर भोजन की तैयारी करने लगतीं, उनके बर्तनों की खटपट सुनाई देने लगती और आस-पास धुआँ चक्कर लगाता हुआ ऊपर बढ़ता। पुरुष बम्बे से पानी भर कर लाते अथवा एक दूसरे से पहिले नहाने का प्रयत्न करते।

कुछ उनमें धार्मिक प्रवृत्ति के लोग भी थे जो अपनी धार्मिकता का अच्छा प्रदर्शन करने के कारण लोगों की श्रद्धा के भाजन हो रहे थे। चुन्ना भगत बम्बे पर नहा कर वहीं से जोर-जोर हनुमान चालीसा पढ़ना शुरू कर देता था और घर आकर इतने जोर-जोर से रामायण का

पाठ करता कि नया आदमी समझता कि कोई ललकार कर आल्हा पढ़ रहा है। कर्नैलसिंह लम्बा-तगड़ा सिक्ख था। उसका चेहरा दमकता रहता और दाढ़ी के बाल रेशम की तरह चमकीले मालूम पड़ते थे। कृपाण कभी उससे अलग न दिखलाई पड़ती थी। जिस समय गुरू ग्रन्थ साहब का पाठ वह अपने चौड़े गले से चीख कर करने लगता तो किसी के लिए भी ध्यान लगाकर कोई काम कर सकना सम्भव न था। हाफिज अली भी मजहब परस्ती में किसी से कमजोर न थे। जब चुन्ना भगत चिल्ला चिल्ला कर रामायण पढ़ता होता कथवा कर्नैलसिंह ग्रन्थ साहब का पाठ करता होता तो उन्हें ऐसा मालूम होता जैसे उनकी मजहबपरस्ती को चुनौती दी जा रही है और वे भी अजान देने वाले मुल्ला के स्वर से कुरान-शरीफ पढ़ने लगते। कभी-कभी उत्साह और जोश में इन लोगों को समय का ज्ञान न रह जाता। यह होड़ ज्यादा देर तक चलती रहती और उन्हें काम पर पहुँचने में देर हो जाती। उस दिन का आधा मजदूरी कट जाता, पर वे लोग अपने मन को सन्तोष दे लेते—धर्म के लिए लोग सिर तक कटवा देते हैं फिर यह कौन बड़ी बात है। छुट्टियों के दिन यह प्रतियोगिता घंटों चलती रहती और उसका अन्त तभी होता जब घर की स्त्रियाँ खाना ठंडा और स्वराब होने की दोहाई दे-देकर चीखने लगतीं।

धीरे-धीरे यह व्यक्तगत धर्म पालन की क्रिया सामूहिक रूप धारण करने लगी। चुन्नू भगत, कर्नैलसिंह और हाफिज शीराज अली का प्रभाव लोगों पर पड़ा। जिन्होंने अपने जीवन में कभी इस ओर ध्यान न दिया था वे भी धार्मिक बन गये। हिन्दुओं के घरों में आये दिन सत्यनारायण की कथा और कीर्तन होने लगे। ढोलक, मंजीरा, हारमोनियम, तबला, बजा-बजा कर भगवान को रिझाने का प्रयत्न किया जाता। कीर्तन करने वाले झूमने लगते। मालूम होता दीन-दुनिया को भूल गये हैं, यद्यपि उनमें से बहुतों का ध्यान वितरण होने वाले प्रसाद में अथवा दरवाजे पर खोले जूतों पर रहता। मुसलमानों में भी नमाजियों की संख्या बढ़ने लगी और जब तब मौलूद शरीफ का भी आयोजन

किया जाने लगा। इस प्रकार क्वार्टरों में रहने वाले जितने व्यक्ति थे एक न एक धार्मिक प्रवाह में बह चले। रह गया पुरुषोत्तम। उस पर इन लोगों की धार्मिकता का प्रभाव पड़ना तो दूर रहा, न जाने क्यों वह इन लोगों के इस प्रकार के उत्साह को देख कर कुण्ठित हो उठता था। उसके पास सत्यनारायण की कथा का निमंत्रण आया, वह नहीं गया। कीर्तन में भी उसने कोई दिलचस्पी नहीं दिखलायी। हाफिज शीराज अली मन ही मन मुस्करायें। उन्होंने समझा कि दाल में कुछ काला है। एक दिन मौका पाकर उसे इस्लाम की अच्छाइयाँ बतलाने लगे, इधर-उधर देख कर हिन्दू धर्म की एकाध कमजोरी भी दिखला देते। पुरुषोत्तम उनका मतलब समझ गया। उसने कहा—"आप किसी और को फाँसिये, मुझ पर आपका जादू न चलेगा।"

हाफिज जी खिसिया गये, बोले—"क्या मतलब है आपका?"

पुरुषोत्तम ने कहा—"मेरा मतलब यह है कि मुझसे आपका मतलब न निकलेगा, आप कोई और दरवाजा देखिये। बात यह है कि मैं मजहब नाम की चीज़ को मानता ही नहीं हूँ।"

"तोबा-तोबा"—अपने मुँह पर धीरे-धीरे तमाचे लगाते हुए हाफिज जी ने कहा—"इसका मतलब क्या मैं यह समझूँ कि आप खुदा को नहीं मानते।"

"अब आप मुझे ठीक ठीक समझ रहे हैं।" पुरुषोत्तम ने कहा।

इतने में चुन्नू भगत आ गए—"क्यों क्या बातें हो रही हैं साहब"—हाफिज शीराज अली की तरफ देख कर मूंछों पर ताव देते हुए उन्होंने कहा।

उसे देखते ही हाफिज जी की बोटी काँपने लगी, क्योंकि उन्होंने सुन रखा था कि जितनी जोर से वह रामायण पढ़ता है उतनी ही जोर से लाठी भी चलाता है। उनको डर लगा कि कहीं पुरुषोत्तम यह कह-कर कि यह हिन्दू धर्म की बुराई कर रहे थे इसे मेरे खिलाफ भड़का न दे वे पहले ही बोल उठे—"मैंने इन बाबू जी से कहा कि आप को

भजन और कथा में हिस्सा लेते नहीं देखा यह क्या बात है, आखिर आदमी को अपनी आकबत बनाने के लिए कुछ तो करना ही चाहिए। इस पर यह कहने लगे कि न मैं मजहब ही मानता हूँ न खुदा को ही मानता हूँ।"

भगत जी को कुछ विश्वास न हुआ हाफिज जी की बात पर। पुरुषोत्तम से पूछा, "क्यों साहब यह बात ठीक है?"

पुरुषोत्तम के "जी हाँ" कहते ही वे चौंक पड़े।

"यानी आप नास्तिक हैं?"

"आप अपनी समझ में शायद मुझे गाली दे रहे हैं लेकिन मैं इसको बिलकुल बुरा नहीं मानता।"

बड़ी घृणा से भगत जी ने कहा—"तो न आप ईश्वर को मानते हैं न किसी धर्म को।"

"आप लोगों की जिस परिभाषा में धर्म आता है उसका मैं कायल नहीं।"

"आप कायल किस चीज के हैं?"

"मानव धर्म का।"

"यह किस चिड़िया का नाम है?"

"मनुष्य मात्र को एक और समान समझना और यथासंभव सब की सेवा करना।"

"आप यह नहीं मानते कि ईश्वर ही हम लोगों को जन्म देता है और सृष्टि का सारा कार्य उसी के आदेशानुसार चल रहा है, इसीलिए हमें उसका कृतज्ञ होना चाहिए।"

"जी नहीं मैं ऐसा नहीं समझता। मेरी समझ में यह सब प्राकृतिक नियम है और यह सब अपने आप हुआ करता है। यदि ऐसा न होता और कोई विचारवान इस सब कार्य का संचालन करता होता तो किसान की पकी फसल पर मूसलाधार पानी व ओले न बरसते, बोये खेत प्यासे ही न पड़े रह जाते, पन्द्रह वर्ष की बालिका विधवा न हो जाती, बच्चे को जन्म देकर, माँ न मर जाती, बहिया में गाँव के गाँव नष्ट न हो

जाते और बसे-बसाये गुलजार नगर भूकम्प और ज्वालामुखी विस्फोट से नष्टभ्रष्ट न हो जाते।

यह सब कर्म्मों का फल होता है महाशय। ईश्वर जो जैसा करता है उसी के अनुसार उसे फल देता है।

यह सब कपोल-कल्पना है मनुष्य की ही सोची हुई बातें हैं। जो भोला बालक पैदा होते ही मातृहीन हो जाता है वह कौन कर्म कर चुकता है जिसका फल उसे पैदा होते ही मिलने लगता है?

जो पहले के जन्म में मनुष्य करता है उसका फल भी उसे भोगना पड़ता है। आप पुनर्जन्मवाद से परिचित होते तो कदापि ऐसा प्रश्न न करते।

जब लोग कर्म और फल में कार्य-कारण का सम्बन्ध न स्थापित कर सके तो उन्होंने पुनर्जन्म की कल्पना कर ली, पर है यह कल्पना ही तथ्य इसमें कुछ नहीं है।

आपसे तर्क करना व्यर्थ है चुन्नू भगत ने खीझ कर कहा—मैं जितनी शास्त्र-युक्त बातें कहूँगा आप उन सबको कल्पना बतला देंगे।"

भगत जी मैं सिर्फ उन्हीं चीजों पर विश्वास करता हूँ जो प्रत्यक्ष दिखलाई दें और बुद्धिवाद का ही कायल हूँ। जिस चीज को आप प्रमाणित कर देंगे उसे मैं मान लूँगा पर अन्ध-विश्वास मेरे किये नहीं होगा।

चुन्नू भगत में भक्ति पक्ष प्रबल था इसीलिये भगत उनके नाम का अंश हो गया था। यों वे जाति के ब्राह्मण थे और पूरे तर्क-शास्त्री थे। धर्म विषयक उत्साह उनमें कूट कूट कर भरा हुआ था और यह उन्हीं के परिश्रम का फल था कि मिल के क्षेत्र में मन्दिर बनने के लिये सभी हिन्दुओं ने संगठित होकर प्रयत्न किया और अधिकारियों से इसकी स्वीकृति प्राप्त कर ली। कई हजार रुपया चन्दा हुआ पर भक्तों का उत्साह अभी ठन्डा न हुआ था। बराबर रुपये जमा हो रहे थे। मन्दिर बनना प्रारम्भ हो गया।

यदि कोई ऐसा व्यक्ति मिल के क्वार्टर्स में था जिसने हिन्दू के घर में पैदा होकर भी इस कार्य में कोई उत्साह न दिखलाया तो वह केवल पुरुषोत्तम था। उत्साह दिखलाना तो दूर वह खुल्लमखुल्ला इस चीज का विरोध कर रहा था। वह कह रहा था—"यह धर्म और भक्ति का गढ़ नहीं स्थापित हो रहा है बल्कि विभिन्न धर्मावलम्बियों में फूट की नींव पड़ रही है। वह कहता था नया मन्दिर स्थापित करने की आवश्यकता ही क्या है। तुम तो स्वयं कहते हो कि ईश्वर सर्वव्यापी है। तब तो उसका मन्दिर प्रकृति का एक एक कण हुआ। फिर गरीब देश का इतना रुपया इसके लिये खर्च करने की क्या आवश्यकता है? अनगिनती शिवालय व मन्दिर इस देश में बने पड़े हैं जिनका कोई पुरसाँहाल नहीं है। न जाने कितने अपाहिज भूखों मर रहे हैं इस देश में उनको अन्न देने वाला कोई नहीं है। दूसरी ओर इस दिमागी ऐय्याशी पर अपना घर लुटा देने वालों की गणना नहीं की जा सकती। पुरुषोत्तम ने बहुत कुछ कहा सुना पर नक्कारखाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता। एक चना भाड़ को नहीं फोड़ सका, मन्दिर बनना था और बन कर ही रहा, जिस दिन मन्दिर में मूर्ति की स्थापना हुई, सब घरों में खुशी मनाई गई। बड़े आयोजन के साथ पूजा हुई, भोग लगा और चौबीस घंटे का अखंड कीर्त्तन हुआ। सिर्फ पुरुषोत्तम ही ऐसा था जिसने उस दिन खुशी न मनाई, मुँह लपेटे पड़ा रहा, और अन्न का एक दाना भी मुँह में न डाला। उसे पूरा विश्वास था कि यह सब अच्छाई के लिये नहीं हो रहा है बल्कि अनर्थ की जड़ है।

पुरुषोत्तम की चली तो जरा भी नहीं, यह हो गया कि उसके अनगिनती दुश्मन हो गये। न जाने कितने इस फिराक में रहते थे कि कभी अकड़ें तो मरम्मत करें पास से निकलते तो जमीन पर थूक कर कहते—"दुश्मन जाता है। आज नास्तिक का मुँह देखा है देखो कैसा दिन कटे।" पुरुषोत्तम इनकी नादानी पर मन ही मन हँसता और लड़ाई बचा जाता। जरूरत पड़ने पर वह इन्हीं लोगों की मदद करता। उसे होमियोपैथी का अच्छा ज्ञान था, जरा किसी की बीमारी सुनता तो

अपना छोटा बक्सा दबाये जा पहुचता और दवाई दे आता। चुन्ना भगत के लड़के को डिपथीरिया हुआ तो वह उनके यहाँ भी पहुँच गया, यद्यपि वे उसे फूटी आँख न देख सकते थे। डाक्टरी दवा बहुत कुछ करा चुके थे, पर लड़के की दशा सुधरती न दिखलाई पड़ती थी। यदि ऐसी विषम परिस्थिति न होती तो वे पुरुषोत्तम को धक्का मार कर अपने दरवाजे से निकाल देते। पुरुषोत्तम का दवा ने अपना काम दिखलाया और बच्चा चगा हो गया तो भगत जी पुरुषोत्तम से कुछ न कह सके, "बाबू जी, बाबू जी" कह कर रह गये। क्या हिन्दू क्या मुसलमान क्या ईसाई सब के दुख मे वह खड़ा होता, उसे किसी से परहेज न था। उसके इस गुण के कारण उसे सब चाहते थे पर अगर पटती न थी तो धर्म के मामले मे। वह भी अपने विचारो का बड़ा दृढ था और इस विषय मे किसी के सामने झुकने को तैयार न था।

हाफिज शीराज अली ने हिन्दुओं के इस उत्साह व प्रयत्न को बड़े ठन्डे दिल से मुस्कराते हुए देखा था। वे सोचते थे, यह लोग जहाँ अपने लिए प्रयत्न कर रहे हैं वहाँ हमारी भी मदद कर रहे है। हम तो अपनी बात सिर्फ इतना कह कर मजूर करा लेगे कि जब हिन्दुओं के लिए मंजूरी मिली है तो हमे भी मिलना चाहिये। यही हुआ भी। हाफिज जी के नेतृत्व मे मुसलमानो का एक डेपुटेशन मिल के अधिकारियो के पास गया कि उन्हे एक मस्जिद बनाने की आज्ञा दी जाय। पुरुषोत्तम ने जैसे ही यह सुना तो वह आधा पागल सा हो गया। जाकर स्वय सब अधिकारियो से मिला और कहा "यदि मिल की बस्ती के अन्दर मन्दिर के साथ ही साथ मस्जिद भी बन गई तो समझ लीजिये कि वैमनस्य का बीज बो दिया गया और एक न एक दिन इसका फल हम सब को भुगतना पड़ेगा।"

अधिकारीवर्ग उसकी बात के कायल थे, पर अब उनके हाथ कट चुके थे, उन्होने जब मन्दिर बनने की स्वीकृति दी थी तो मस्जिद के लिये कैसे इन्कार कर सकते थे।

हाफिज जी व उनके अनुयायियो को जब पुरुषोत्तम की इस हरकत

का पता लगा तो वे बहुत क्रोधित हुए। उनकी गुप्त बैठक में यहाँ तक प्रस्ताव हुआ कि इसे किसी तरह खपा ही दिया जाय। रहमान कसाई जो इस फन का उस्ताद था और जो अब तक कई खून करके कानून को धोखा देकर साल दो साल की सजा काट कर ही छुट्टी पा गया था बुलाया गया और उसके सामने मज़हबी जोश दिला कर यह काम रखा गया। वह एकदम तैयार हो गया, उसे अपनी जान की जरा भी परवाह न थी। व्यक्ति का नाम पूछने पर पुरुषोत्तम बताया गया। उसने प्रश्न किया "वही तो नहीं जो डाक्टरी भी करते हैं।"

उत्तर मिला—"हाँ, हाँ वही।"

"तब बाबा मुझे माफ़ करो, मैं इतना नाशुक्रा नहीं हो सकता। उस शख्स ने मौत के मुँह में जाती हुई मेरी वाल्दा को बचाया है। वह उनकी बीमारी के वक्त रात रात भर मेरे गन्दे बदबूदार घर में बैठा रहा है और मुझसे एक पैसा भी नहीं लिया है। ऐसे आदमी के अहसान का बदला अगर मैं उसकी जान लेकर दूँगा तो मुझे दोजख में भी जगह न मिलेगी। कोई और आदमी बताओ—एक नहीं दो—अगर मैं पीछे हटूँ तो जो काफिर की सजा सो मेरी।

दो एक जाँ-बाज आदमी और टटोले गये पर पुरुषोत्तम का नाम सुनते ही वे सब रहमान की तरह पीछे हट गये। मिल के क्वार्टरों में रहने वाले सब लोग जहाँ उसकी नास्तिकता के विरोधी थे वहीं वे उसके किसी न किसी अहसान से दबे भी थे। उसकी सारी तनख्वाह दवाइयों, गरीब लोगों को जरूरत के वक्त रुपया पैसा देने और मोहताजों को भोजन कराने में खत्म हो जाती थी। मनुष्य की चिन्ता से उसे फुर्सत ही न मिलती थी जो ईश्वर का ध्यान करता।

मसजिद को बने कई महीने गुजर गए, पर जैसी पुरुषोत्तम को आशंका थी वैसा कुछ न हुआ। एकाध लोगों ने इस बात को लेकर उस पर छींटे भी कसे। कहा—"तुम तो कहते थे कि मसजिद बनते ही आफत बरपा हो जायेगी। हमें तो नहीं दिखाई दिया कि कहाँ गदर हो गया।"

यह बिगड़ कर बोला—"गदर जब तक नहीं होता है तभी तक खैर मनाओ। जिस दिन हो जायेगा उस दिन किसी के भी यहाँ घी के चिराग न जलेंगे। मातम ही मनाना होगा।"

एक दिन दूर के एक गाँव में एक गरीब बीमार को देखने पुरुषोत्तम गया हुआ था कि उसने सुना मिल के हिन्दू मुसलमानों में झगड़ा हो गया। यह सुनते ही उसका कलेजा मुँह को आ गया, आखिर वह बुरी घड़ी आ ही गई। वह उल्टे पैरों क्वार्टरों की तरफ भागा।

बात यह थी कि हिन्दुओं के मन्दिर में प्रातःकाल से ही अखण्ड कीर्तन हो रहा था और इस समय मसजिद में मुसलमान लोग नमाज पढ़ने के लिए खड़े हुए थे, पर कीर्तन की भड़भड़ के कारण नमाज पढ़ सकना किसी तरह मुमकिन ही न था। उनके एक प्रतिनिधि ने मन्दिर के भक्तों से यह जाकर कहा—"थोड़ी देर के लिए कीर्तन बन्द कर दो।" उत्तर मिला—"कीर्तन अखण्ड है वह एक क्षण के लिए भी नहीं बन्द हो सकता।" यह उत्तर नमाजियों को अपनी और अपने मजहब की तौहीन से भरा हुआ मालूम हुआ और यह निश्चय हुआ कि कीर्तन को नमाज के लिए बन्द होना पड़ेगा। मजहब के दीवाने अल्लाह और अली का नाम लेकर अल्लाह के बन्दों के खून से प्यास बुझाने चल दिये। यह खबर पाते ही हिन्दुओं के मन्दिर में भी लाठियाँ ही लाठियाँ इकट्ठी हो गईं। वे भी 'बम महादेव' और 'जै बजरंगबली' के नारे लगाते हुए मन्दिर के सामने आ डटे—अखण्ड कीर्तन की अखण्ड धर्म की रक्षा में!

हाफिज शीराज अली अब वे हाफिज जी न थे जो चुन्नू भगत की लाठी से डरते थे। अब उनके पास ऐसे-ऐसे अनेक चेले थे, जो भगत को कुछ न गिनते थे। हाफिज जी ही इस वक्त अगुवा थे। उन्होंने बढ़ कर अपने हाथ के बड़े छुरे को हवा में घुमाते हुए दहाड़ कर कहा—"तुम लोगों को यह शोरगुल नमाज के वक्त बन्द करना होगा।"

चुन्नू भगत को अपना तो बल था ही अपने अनुयायियों की महान संख्या से भी वे परिचित थे। कर्नलसिंह ऐसा जवान भी उनकी पीठ पर हाथ रख रहा था। लाठी को जमीन पर ठोकते हुए बोले—"होश

की दवा करो मियाँ जी, यह शोर गुल नहीं है अखंड कीर्तन है और इसे बन्द कराने वाला कोई पैदा नहीं हुआ।"

'थोड़ी देर तक बन्द करना होगा' और 'नहीं बन्द होगा' की आवृत्ति मन्द सप्तक से लेकर तार सप्तक तक के सब स्वरों में की गई। फिर एक ओर से हाफिज ज अपना छुरा लेकर और दूसरी ओर से भगत जी अपना लट्ठ लेकर एक दूसरे पर झपटे और दोनों ने भरपूर वार किया। दौड़ता हुआ पुरुषोत्तम इन दोनों के बीच में आ गया। उसकी कोख में छुरा घुस गया और सर पर लाठी का भरपूर वार पड़ा। वह गिर कर दम तोड़ने लगा। अनुयायियों के हाथ उठे के उठे ही रह गए।

पुरुषोत्तम ने रुक रुक कर परन्तु अपने हृदन की पूरी शक्ति के साथ कहा—"भाइयो मेरी बात मान लो, दुनिया के सारे झगड़े की जड़ मजहब अथवा धर्म है।"

धर्म के उन ठेकेदारों का यशरूपी वह श्वेत आकाश उस शहीद के रक्त मे उस समय अरुणिम हो रहा था।

पृथ्वी का स्वर्ग

किसी धन-लोलुप पूँजीपति की भाँति अँधेरा ग़रीब दिन और उसके प्रकाश को निगलने लगा था। रईस लोग हवाख़ोरी के लिए निकल पड़े थे। दिन भर की पिसाई के पश्चात् भी स्कूल के दफ़्तर की फ़ाइलों से लदा हुआ क्लर्क घासीराम अपने भारी क़दमों को उठाता हुआ घर की ओर चल पड़ा था। जुलाई का महीना है, स्कूल अभी-अभी खुला है। आजकल एक ओर ट्रांसफ़र सर्टिफ़िकेट लेनेवालों की धूम है तो दूसरी ओर भर्त्ती होनेवालों की। दफ़्तर में जितने आते हैं, घोड़े पर सवार ही आते हैं। उनका काम सब काम रोककर पहले होना चाहिए। साथ में किसी न किसी की सिफ़ारिश लेते आते हैं। कोई डिप्टी कमिश्नर की

चिट्ठी लाया है, कोई कप्तान साहब की। कोई हेडमास्टर साहब का पिट्ठ है तो कोई किसी मास्टर साहब का दोस्त। हेडमास्टर साहब नये हैं काम करने में, पर रोब-दाब में पुरानों से भी पुराने, एक मिनट कुर्सी पर बैठने नहीं देते। बेचारे घासीराम का दिन भर दफ़्तर से हेडमास्टर के कमरे तक दौड़ते-दौड़ते पलस्तर ढीला हो जाता है। कौन काम हेडमास्टर की ताक़त के अन्दर है और कौन बाहर, यह भी घासीराम को ही एजुकेशन कोड देखकर बतलाना पड़ता है। लड़कों को चाक और स्याही चाहिए, मास्टरों को प्राविडेंट फ़ंड का हिसाब ठीक करवाना है, छुट्टी जुड़वाना है और हेडमास्टर साहब को क़दम रखना सिखाना है तो सबके लिए क्लर्क बाबू की ही ज़रूरत पड़ेगी। सवेरे से शाम तक जब तक दफ्तर में रहता है—"हाँ हुजूर करता हूँ, हाँ मास्टर साहब, अभी ठीक करता हूँ, हाँ भैया, अभी देता हूँ"—कहते कहते जबान घिस जाती है, पर लोगों के मिजाज नहीं मिलते। ताव दिखलाने लगते हैं तो वह भी झुँझला जाता है और क्लर्क-मनोवृत्ति (Clerk mentality) को दोषी ठहराया जाता है। किसान और मज़दूरों के संकटों का चित्र खींचनेवाले कामरेडों की दृष्टि में भी जीवन-मार्ग पर घसिटते हुए यह दयनीय प्राणी नहीं आता। कोई यह नहीं सोचता कि तेली के बैल की भाँति दिन भर दो और चार, छै के चक्कर में घूमनेवाला यह व्यक्ति भी सहानुभूति का भागी है, इसके भी काम करने की हद है, बहुत काम करने पर यह भी परेशान हो सकता है, झुँझला सकता है।

घासीराम सोचता हुआ जा रहा था, आज हेडमास्टर ने एक अर्जी के मस्विदे में गलती हो जाने पर उसे बुद्धू और कुन्दजेहन कहा था। उसे वे दिन याद आये, जब वह अपनी स्कूल की डिबेट में धारा प्रवाह बोलता था और उसके अध्यापक उसके एक दिन नेता होने की भविष्य-वाणी करते थे। वह अपने इन्टरमीडियेट कालेज में टेनिस का चैम्पियन था। बाहरवालों से मैच होने पर अपने साथियों की आँखों में बिजली की तरह कौंधकर ओवरहेड शाट मारता था तो लोग उसके एक दिन विश्वविदित खिलाड़ी होने की बात कहते थे। कैसे ठाटबाट थे! उसके

पतलून की क्रीज कभी बिगड़ती न थी। कालेज जाने, खेलने और सैर करने जाने के वक्त के अलग-अलग सूट थे। तब वह होनहार और सपूत कहा जाता था, आज वही बुद्धू है। घासीराम सोचता था कैसे एक घटना पिता की मृत्यु ने. उसके जीवन का पाँसा पलट दिया। वह राजकुमारों के से ठाट-बाट में रहनेवाला, सैकड़ो रुपये यार-दोस्तों की दावत में खर्च कर देनेवाला मिस्टर घासीराम बाबू घासीराम, एक ही दिन में मोहताज और नौकरी के लिए दर-दर ठोकरें खानेवाला घासीराम बन गया और बड़े जोड़-तोड़ के बाद क्लर्क की नौकरी पाकर, गृहस्थी के भार से लदा हुआ, महँगी का सताया हुआ वह निरीह प्राणी कैसे बुद्धू बन गया! घासीराम सोचता था, सचमुच ही तो मुझमें वह तेजी—वह फुर्ती न रही, जिस पर लोग बलि-बलि जाते थे। अब तो दिन भर के कठिन परिश्रम, गृहस्थी के नोन-तेल की चिन्ता और दूध-घी विहीन रूखा सूखा भोजन उसे सचमुच निर्जीव, बोदा, सुस्त, बुद्धू और कुन्दजेहन बनाये डाल रहे थे, फिर कहनेवालों का भी क्या दोष है? वह भी तो ठीक ही कहते हैं।

अपनी विचारधारा में मग्न घासीराम को यह भी नहीं पता था कि वह सड़क के किस भाग में चल रहा है और कितना चल आया है कि एक इक्केवाले की कर्कश आवाज ने उसे चौंका दिया—"अरे वाह बाबू जी, ऊँघते हुए सड़क पर चलते हो। सैकड़ों आवाजें दीं और सुनते ही नहीं हो। अभी जरा-सा धक्का लग जाय तो जान आफ़त में कर दोगे। बीचोंबीच में आप चल रहे हैं बस्ता दबाये हुये, हटिये किनारे, नहीं तो मोटर के नीचे आ जाइयेगा तो घरवाली रास्ता ही देखती रह जायगी।" इतना लम्बा लेक्चर देकर इक्केवाला बढ़ा चला गया। घासीराम को वे दिन याद आये, जब लखनऊ के बदमाश-से-बदमाश इक्के-ताँगेवाले भी उसकी टोली से थर्राते थे। न जाने कितनों को मार-मारकर अक्ल ठिकाने लगा दी थी, पर आज समय ने उसे चुप रहना, गम खाना सिखला दिया है और व्यर्थ के झंझट मोल लेने से वह यही अच्छा समझता है। इसी लिए तो दबी बिल्ली की भाँति चूहों से भी कान कटवाता है। चौंक

कर घासीराम ने देखा, वह अपने घरवाली गली से कुछ आगे निकल आया है, पीछे फिरा और घर पहुंचा।

दरवाजे पर ही सात साल का लड़का खड़ा हुआ था, बाप को देखते ही बोला—"पिताजी, ड्राइंगमास्टर ने आज हमको बहुत मारा, और घंटे भर खड़ा रक्खा। कहा है, कल रंग का डब्बा लेकर आना, नहीं तो हड्डी तोड़ डालूँगा। हमको रंग का डब्बा ले दीजिये।"

भूखा-प्यासा-परेशान घासीराम अपने को न सम्हाल सका, गुस्सा आ गया, एक लप्पड़ उसके गाल पर तड़ाक से रख दिया और अन्दर चला गया। लड़का चीख चीख कर रोने लगा। मार की चोट जो कुछ थी सो थी ही, दुःख इस बात का विशेष था कि वह निरपराध था, उसने कोई अनुचित बात न कही थी। अबोध बालक को इतनी समझ कहाँ कि हारे-थके आदमी से एकदम कुछ सवाल कर बैठना भी गलती है। कपड़े उतारते वक्त शौच जाते वक्त बच्चे के फूट फूट कर रोने की आवाज घासीराम के कानों में पड़कर उसे व्याकुल करती रही। अपनी तावबाजी पर उसे पश्चात्ताप हो रहा था। 'बेकार मैंने उस बेचारे को मारा। वह क्या समझ सकता है मैं कितना परेशान हूँ, उसे क्या ज्ञान कि तनख्वाह रोटी के सामान और किराये में ही खत्म हो जाती है, और चीज खरीदने के लिये पैसे कहाँ से लाये। अब घासीराम को स्कूल के मास्टरों पर क्रोध आया—यह लोग न कुछ पढ़ाने के, न लिखाने के, सामान मँगवाने को कहो तो कोई हद ही नहीं। छोटे-छोटे दरजे में कितना किताबें हैं। चौथे पाचवे क्लास के लड़के को इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र की किताबें खरीदवाते हैं। वाटर कलर बाक्स, पेस्टल बाक्स, पेन्टिङ्ग ब्रश और स्टेन्सिल ब्रश चाहिये। कहाँ से पैसे आवें इन चीजों के खरीदने को। वैसे ही कौन सी बरकत थी, लड़ाई आई तो रुपये का मोल तीन आने भर रह गया। सरकार ने महँगाई दी जैसे ऊँट के मुँह को जीरा, उससे क्या बनता है। जो चीज खरीदने जाओ तो दाम सुनकर कान फट जाते हैं। उस रोज बाजार में पूछा तो था, पेस्टल कापी बारह आने की मिलती है और वाटर कलर बाक्स दो रुपये का। कहाँ से इतने रुपये

लावे, जो इस लड़के को पढ़ावे । वह बेचारा करे भी क्या ? स्कूल में मार खाता है तो आकर कहता है और मुझसे न कहे तो कहे किससे ।'

खाना खाने बैठते वक्त पत्नी से कहा—"शंकर को भी बुला लो ।" वह गई और बड़ी मुश्किल से बुलाकर लाई । पति से डर के मारे इतना भी न पूछा कि आखिर क्या बात हुई थी जो मारा । थाली सामने आई । घासीराम ने जैसे ही कौर तोड़कर मुँह में रक्खा, चिल्लाकर बोला—"दाल जलाकर रख दी, गधी कहीं की ।"

पत्नी के प्राण सूख गये, वह पहले ही जानती थी कि आज खैर नहीं है । गिड़गिड़ाकर बोली—"छोटे मुन्ने का बुखार बढ़ गया है । वह चुप ही न होता था । उसी को दूध पिला के सुलाने लगी, तब तक जरा लग गई ।"

"जरा लग गई है या ज्यादा, अब तू ही खाके देखना"—कहकर घासीराम चौके से उठने लगा । पत्नी ने हाथ पकड़कर कहा—"जरा रोटी छुवा-छुवाकर खा लो, अचार निकाले देती हूँ ।" घासीराम ने हाथ झिटक दिया और आगे बढ़ा ही था कि पत्नी बोली—"तुम्हें मुन्ने की कसम है जो चौके के बाहर जाओ ।" पेट में घासीराम के भी आग लगी ही हुई थी, आग्नेय नेत्रों से स्त्री की तरफ़ देखता हुआ बैठ गया और किसी तरह पेट भरने लगा ।

खाना खाकर उठा तो पत्नी ने कहा—"छोटे मुन्ने की दवा लेने जाओगे न ?"

"जाऊँगा क्यों नहीं !" घासीराम बोला—"कर्म मैंने किये हैं तो फल कौन भोगेगा ?"

शीशी लेकर चलने लगा तो पत्नी बोली—"इन होम्योपैथिक डाक्टर की दवा तो बहुत दिनों से हो रही है । बुखार उतरता ही नहीं है, किसी और को नहीं दिखा सकते ?"

"दिखा तो मैं सबको सकता हूँ, पर दिखाने के लिए रुपये चाहिये सो कहाँ से लाऊँ ?"

"पर इससे फायदा जो नहीं होता ।"

"नहीं होना तो न हो, जब और चारा ही नहीं है, एक यही सहारा है तो अच्छा होना होगा तो इसी से होगा, वर्ना न होगा।"

"ऐसी बातें मुँह से क्यों निकालते हो"—कहती हुई पत्नी कातर हो उठी।

घासीराम दवा लेकर लौटा और लालटेन रखकर दफ्तर की फाइलों में निपटने बैठा। बहुत रात बीती तो पत्नी ने कहा—"अब सो जाओ, कब तक काम करते रहोगे।"

"खत्म कर लूँ, तब तो सोऊँ।"

"यह तो जन्म भर न खत्म होगा, सारी तन्दुरुस्ती इसी के पीछे गारत हो गई।"

"हो गई तो हो जाय, अफसर को तो काम चाहिए, उससे तन्दुरुस्ती से मतलब नहीं।"

"कुछ लोग सुना है बिलकुल काम नहीं करते हैं और अफसर उन पर बहुत खुश रहते हैं, वह कौनसी तरकीब होती है?"

"चुप भी रहो"—घासीराम ने डाँटकर कहा—"तुम तो पहेलियाँ बुझाने लगीं और यहाँ अभी पूरा पहाड़ ढकेलने को रक्खा हुआ है।"

गृहिणी के मुँह से एक ठंडी साँस निकल गई, आखें डबडबा आईं। अतीत के सुनहले चलचित्र आँखों के सामने घूमने लगे—माता-पिता का वह लाड़ प्यार राजरानी, राजदुलारी, रानी बेटी! माता का जबर्दस्ती दूध, मिठाई और फल खिलाना। सहेलियों के साथ पढ़ना लिखना, गाने बजाने की वह रंगरेलियाँ। फिर वह दिन जब वह नई नई ससुराल आई थी, पेशकार ससुरजी जिन्दा थे, कचहरी से लौटते तो मिठाई का दोना लिये हुए, 'बहू-बहू' कहते उनका जी न भरता था। घासीराम का भी तब कैसा प्रेम था, नित नई सौगात लाते थे, बातों-बातों में रात कट जाती थी, वे आलिंगन-परिरम्भण क्या भूल जाने की वस्तुएँ हैं! हा! वे दिन अब तो सपने हो गये।

* * *

घासीराम दफ्तर जाने को तैयार थे कि गृहिणी ने कहा—"देखो

सुनते हो, छोटे मुन्ने की हालत दिन पर दिन बिगड़ती चली जा रही है। तुमसे कब से मैं कह रही हूँ, पर तुम मेरी सुनते ही नहीं। न खायेंगे, न पियेंगे, पर इस प्रकार बच्चे को घुलता हुआ तो नहीं देखा जाता।"

घासीराम ने विवशता प्रदर्शित करते हुए कहा—मैं भी देख रहा हूँ, मेरे भी कुछ अक्ल है। वह बच्चा मेरा भी है, बाप हूँ, हृदय भी है, कमाई नहीं हूँ, पर पैसे की कमी से लाचार हूँ। आज पहली तारीख है, तनख्वाह मिलेगी। पहले इसे डाक्टर लाकर दिखलाऊँगा, तब लोगों का देना चुकाऊँगा, यह तो जिन्दगी भर का है।"

शाम को घासीराम लौटे तो डाक्टर को लिवाते लाये। घर की, घर के कपड़ों और बिछौनों की ऐसी बुरी दशा थी कि किसी को घर के अन्दर तक न लाते थे। यही कारण था कि लोगों के साथ उठना-बैठना छोड़ दिया था। किसी के घर जाओ तो उसे बुलाना भी तो पड़ेगा और उनके यहाँ आकर कोई देखेगा तो क्या थूकेगा। मध्य वर्ग के आदमी की इसी जगह सबसे ज्यादा मरन है। उसे लोग सभ्य, सुसंस्कृत समझते है, बाबूजी का सम्बोधन उसे प्राप्त है। उस मर्यादा की भी तो उसे रक्षा करनी होगी। निम्न वर्ग का आदमी है, मज़दूर है, कोई उससे कहता है तुम्हारे पास अमुक वस्तु नहीं है—तो वह कह देता मेरे पास यह कहाँ से आई, बाबू जी मैं ग़रीब आदमी हूँ। पर मध्य वर्ग का बाबू तो यह भी नहीं कह सकता, उसे अपनी स्थिति अच्छी होने का दावा होता है। उसके लिए दिखावा करना होता है। इसी स्थान पर वह समाज का सबसे दयनीय प्राणी है। जाने कितने बढ़ई हैं, लोहार हैं, मिस्त्री, कारीगर है जो उससे थोड़ादुगना अच्छा कमाते हैं। शराब ताड़ी में न खोएँ तो उससे बहुत अच्छे रहे, क्योंकि उनसे साफ़-सुथरे रहने की, ठीक पोशाक पहनने की तो कोई उम्मीद नहीं करता, पर वह तो सभ्य बनने के नाम पर मरा जाता है। घासीराम के पास के खटिक ने इसी साल आम की फ़स्ल में तीन हजार कमाये और एक मकान खरीद लिया। मेहतर, नाई, धोबी, चपरासी, उससे हर त्योहार का इनाम माँगते हैं और उसे देना पड़ता है। वह उनसे नहीं कह सकता कि मेरी दशा बुरी है। मैं

तुम्हारी मज़दूरी दिये जाता हूँ, यही ग़मीनत समझो, मुझसे न माँगो। वह अपना पेट काटता और अपनी मर्यादा की रक्षा करता है।

घासीराम ने डाकर को कुर्सी डालकर बैठक में बिठलाया और अन्दर जाकर अपनी वास्तविक दशा को ढँकने का प्रयत्न करने लगा। गन्दी और फटी हुई चादर हटाकर बच्चे को खाली दरी पर ही लिटा दिया। स्त्री को उसी एक साबुत धोती को निकालकर पहनने के लिए कहा, जो वह किसी आगन्तुक के आने की खबर सुनकर पहन लिया करती थी। उन जूठे बर्तनों को बीच आँगन में उठाकर एक ओर रक्खा, जो बड़े लड़के ने स्कूल से लौटने पर खाकर बीच ही में डाल दिये थे। पत्नी पर क्रोध आ गया; दौड़कर उसके एक हाथ मारा—"बेवक़ूफ़ कहीं की, घर की कैसी हालत बनाये रहती है। एक वे औरतें होती हैं, जिनका घर दर्पण-सा चमकता रहता है। यहाँ हमेशा मक्खियाँ ही भिनकती रहती हैं।" ऐसा नहीं है कि घासीराम स्त्री को पैर की जूती समझते रहते हों या उसके अधिकारों के क़ायल न हों या इस ओर उनके विचार संकुचित हों, पर घर के अन्दर की विषम परिस्थिति ने उन्हें चिड़चिड़ा बना दिया है। वे क्रोधावेश में सौजन्य के नियम भूल जाते हैं।

पत्नी ने उन्हें उस विवश और करुण दृष्टि से देखा, जो तीर से भी अधिक गहरा घाव कर देती है और मानो आँखों ही आँखों में कह डाला कि तुम इतना भी नहीं समझते कि जिस मा का बच्चा अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा हो, उसके होश ठिकाने नहीं रहते, उसे कुछ भी करने की सुध नहीं रहती। उस दृष्टि के पड़ते ही घासीराम पानी-पानी हो गये और डाक्टर को अन्दर लाने चले गये।

डाक्टर अन्दर आये। मरीज़ को उन्होंने कम देखा, उसका हाल कम सुना, घर और कपड़ों की सफाई पर लेक्चर ज्यादा दिया। कीमती नुसखा लिखा, ग्लूकोज और अंगूर की शकर के डब्बे खरीदने को बताये और अपनी फीस के रुपये लेकर चलते बने।

घासीराम ने मीजान लगाया, आठ-नौ रुपये से ज्यादा ही का खर्च और था। पत्नी से बोले—"क्या कहती हो? इस तरह दो-चार दिन

भी दवा चल गई तो इस महीने में खाने का ठिकाना न रह जायगा।"

"न रह जायगा तो न रह जाय. उसकी ज़रा तबियत सम्हल जाय तो तुम मुझे भैया के पास भेज आना और दस-पांच रुपये किसी से लेकर गुज़र कर लेना। देखते हुए तो आंख नहीं फेरी जा सकती। मेरी तो कोई जान भी ले ले और इसे अच्छा कर देने को कहे तो एक मिनट भी आगा पीछा न करूँ।"

धामीराम गये, दवाइयाँ और ग्लूकोज इत्यादि लाये। रास्ते भर दूकानदारों को गाली देते आये—इन बेईमानों के मारे तो और भी नाक में दम है। लूट मचाये हुए हैं. एक एक के छः छः किये हुए हैं, जाने इतना मुनाफा कहाँ रक्खेंगे। ले लो बच्चा, न फूट के निकले तो कहना, दूकान में आग ही लग जायगी. सालों का बटोरा घण्टों में स्वाहा हो जायगा, तब अक्ल ठिकाने लगेगी।

चौथे दिन बच्चे के मुँह पर कुछ रौनक़ आई। उसने आँख खोली और फीक-फीकी हँसी लाकर मा को निहारा। मा निहाल हो गई। इस वक्त उसके पास राज्य भी होता तो अपने लाल पर न्योछावर कर देती। हुलसकर पति को बुलाया—"ए जी सुनते हो. छोटे मुन्ने ने आँखे खोली हैं।"

धामाराम दौड़ते आये। उनका चिन्ता की रेखाओं से चिह्नित मुख भी खिल उठा। पर किसे पता था कि यह दीपक का वह क्षणिक प्रकाश है, जो बुझने के पहले एक बार जल उठता है। सूर्य का वह अन्तिम प्रकाश है, जो अस्त होने के पहले एक बार भूमण्डल को चमका देता है। उधर अन्धकार ने प्रकाश को दिन से छीना, इधर कराल काल ने माता से उसका हृदय का टुकड़ा छीन लिया।

धासीराम डाक्टर को लेने गये थे। लौटकर आये तो घर में कोहराम मचा हुआ था। बड़ा मुन्ना एक ओर खड़ा चिल्ला रहा था—हाय भैया, तू कहाँ गया, अब मैं किसे खिलाऊँगा और गृहिणी तो पागल हो रही थी।

डाक्टर ने कर्तव्यवश नब्ज देखी, सब कुछ शेष हो चुका था, और

बाहर निकल आया। घासीराम रुपये देने लगे तो शायद उसके मन में भी कुछ अन्तर्द्वन्द्व हो आया—'लूँ कि न लूँ।' फिर सोचा—मेरा तो यह पेशा ही है, किस-किस पर दया करूँगा। रुपये लेकर जेब में डाले और तेज़ी से वहां से चल दिया।

बच्चे की लाश को गड्ढे में रखते हुए घासीराम ने कहा—"नहीं जानता बेटा कि पुनर्जन्म होता है या नहीं, अगर नहीं होता है तो तुम्हारे दुःखों का अन्त है, पर अगर वह ईश्वर कहीं है और उस नाम-धारी दुःखदाता ने पुनर्जन्म भी कष्ट देने के लिए बना ही रक्खा है तो मेरा आशीर्वाद है कि तुम्हारा जन्म दूसरी बार ऐसी जगह न हो, जहाँ स्तनों में दूध न हो, बाजार से दूध न खरीदा जा सके और बच्चा भूख से घुल-घुलकर ठीक इलाज न होने से मर जाय।"

* * *

जब से बच्चा नहीं रहा, गृहिणी का हाल बेहाल है। तन की सुध नहीं रही, खाना-पीना भूल गया, दिन रात एक काम है रोना और रोना। बच्चे का कोई चीज़ देख लेती है तो उसी को लिये घण्टों बिलखती रहती है। पति लाख समझाते हैं, कहते हैं—"देखो, बड़ की परवा करो या उसको भी खो देनेवाली हो। देखो कैसा दुबला हो गया है! मैं अभी दफ्तर से आया तो कमरे में बैठा रो रहा था और तुम इसकी फिक्र ही नहीं करतीं।"

मा बच्चे को बुलाकर गले से लगाकर रोने लगती है उसे ऐसे अपनी बाँहों में लपेट लेती है जैसे उसे भी कोई उससे छुड़ाये लेता हो। दिन पर दिन बीतते जाते हैं, घासीराम अपने मन के दुःख को यह सोच-कर भुलाने लगे हैं कि मेरे घर में उस बेचारे को कौन सुख था, अच्छा ही हुआ जो इस दुःखद जीवन से छुटकारा पा गया। पर गृहिणी के मन की कसक नहीं जाती, उसका ठण्डी साँसें लेना नहीं बन्द होता, न आँसुओं का तार। पति के समझाने का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे लाख कहते हैं—"तुम क्या करनेवाली हो। अपने शरीर को तो देखो सूख-कर काँटा हो रहा है।" पर गृहिणी कुछ सुनती नहीं।

एक दिन घासीराम ने बदन पर हाथ रक्खा तो चिल्ला पड़ा—"हैं! तुम्हें बुखार भी है और तुमने मुझे बतलाया भी नहीं। पता नहीं कबसे होगा और ऐसी हालत में नहाती भी हो, रोटी भी बनाती हो। मालूम हो गया, तुम मुझे दुःख ही देना चाहती हो।"

उस दिन से होम्योपैथिक डाक्टर की दवा आने लगी, पर जब कुछ फायदा होता न दिखलाई दिया तो एक पड़ोसी से रुपये उधार लेकर डाक्टर को बुलाया गया। डाक्टर ने आला लगाकर अच्छी तरह देखा-भाला और घासीराम को बाहर ले जाकर कहा—"तुम्हारी पत्नी को तपेदिक़ हो गया है। पहली स्टेज समाप्त हो चुकी, दूसरी है। पहाड़ पर ले जा सको तो बहुत अच्छा हो। यह मकान फौरन से पेश्तर छोड़ दो, किसी हवादार खुले मकान में रहो। इसमें रहने से मरीज़ कल मरता होगा तो आज ही मर जायगा। ताजा दूध और फल जितना अधिक मरीज़ खा सकेगा उतना ही लाभदायक होगा। उसे प्रसन्नचित्त रहने की आवश्यकता है, रेडियो सुनने से उसका मन बहलेगा। उसे प्रसन्न रखने की कोशिश करो। प्रसन्न, हर वक़्त प्रसन्न।"

घासीराम ने यह सुना और वह धम से अपने स्थान पर बैठ गया। अपने पिता के उन शब्दों की याद आई जो उन्होंने उसके ब्याह के इन्कार करने पर कहे थे—"बेटा, ऐसी नादानी की बातें मत करो, ब्याह करने पर पछताना ही हाथ लगेगा। गृहस्थी पृथ्वी का स्वर्ग है। उसके लिए देवता भी तरसते हैं और अवतार धारण करते हैं" और वह सोच रहा था कि क्या सचमुच यही पृथ्वी का स्वर्ग है।

'कफन-खसोट'

'यह लाश अब तक पड़ी है क्या छोटे?'

'और नहीं क्या चाचा। देखते नहीं हो, मारे बदबू के खड़ा नहीं होते बनता है यहाँ! वाह रे बड़े आदमियो! क्या कहने हैं तुम्हारे।'

'बड़े आदमी नहीं खाक हैं, बेईमान कहीं के। कैसी खिदमत की है इस नौकर ने इनकी, यह मैं क्या बताऊँ। बारह-तेरह बरस का था तब यह इनके घर आया था, तब से इतनी उमर तक इनके यहाँ रोटी-कपड़े पर पड़ा रहा। हो गये होंगे कोई पचास बरस। तब बड़े लाला जिन्दा थे; उन्हींने इसे रखा था। महीना पूरा होने पर जब वह तनखाह के रुपये देने लगे तो बिचई ने कहा—मैं क्या करूँगा इनका। आप जमा कर लें अपने पास, और बिचई की तनखा बड़े लाला के पास जमा होती रही। दो दफ़े उसने बड़े लाला से सौ-सौ रुपये माँगे, वह भी इनकी लड़कियों के ब्याह में अपनी ओर से देने के वास्ते। वहीं जो कुछ उसने लिया सो लिया, उसके बाद बड़े लाला न रहे और इस बेईमान रायसाहब का राज्य आया। इसने इस नौकर की ऐसी बेकदरी की कि जिसकी बात नहीं। जब से बड़े लाला न रहे तब से उसके शरीर को भी जैसे घुन-सा लग गया। और इस रायसाहब ने कभी दवा-दारू के लिए चार पैसे भी न दिये। बेचारा खैराती अस्पतालों में ठोकरें खाता रहा और जब इतना भी दम न रह गया, तब खाट पर पड़ गया। कितना जबर्दस्त गुर्दे का दर्द उसके उठता था! मछली की तरह तड़पता था पर कोई पूछनेवाला न था। इसी तरह एक एक बूँद पानी को तरसकर बेचारा मर गया, और इन बेईमानों ने उसकी खबर न ली। कोई बाहरवाला कुछ कह न सकता था, कर न सकता था, कोठी के अन्दर जाय तो जाय कैसे? बड़े आदमी हैं, पता नहीं कैसे पेश आयें।'

'लाश की बड़ी बुरी हालत है चाचा, मार फूल गई है, कहाँ इसके बदन में हड्डियाँ ही हड्डियाँ दिखलाई पड़ती थीं और इस वक्त देखो तो मालूम होता है, कोई देव-दानव पड़ा है।'

'सड़ रही है लाश, चौबीस घण्टे से ज्यादा हो गये पड़े हुए. फूल तो जायेगी ही, मुरब्बा थोड़े ही है।''

'तो यह इसको इस तरह कब तक डाले रहेंगे? इस तरह तो बीमारी फैलने का अन्देशा है।'

'फलने दो। सबके पहले तो इन्हीं सालों को लगेगी बीमारी।'

'इसका तो उन्हें डर ही नहीं है चाचा। यह उनका पिछवाड़ा पड़ता हो है और इधर से उनके रहने की जगह बहुत दूर है न। उन्हें न तो बदबू का पता लगता है और न बीमारी का। हमी तुमको इसकी चिन्ता करनी होगी, कोई तरकीब सोचो।'

'एक बात हो सकती है। कोई जाकर लावारिस लाशें उठानेवाले अड्डे पर खबर कर दे तो सब ठीक हो जाय। वह मुन्नन है न, उससे कह दो तो वह लाश उठा ले जायगा। मैंने उसे देखा है कि बिल्कुल लावारिसों को भी उठाकर वह दफन कर आता है। न होगा हम लोग चन्दा ही कर लेंगे। अच्छा, मैं अभी जाता हूँ चाचा।'

मुन्नन ने अपना पेशा ही बना लिया है लावारिस और लावल्द लाशें उठाने का। सेन्ट्रल और डिस्ट्रिक्ट जेले दोनों में उसका ठेका है हा. आर्यसमाज का भी जितना काम है, वह भी उसे मिलता है। इतना बड़ा लखनऊ शहर है, काम की कोई हद नहीं है, अकेले सम्हल थोड़े ही सकता है, इसलिए उसने आदमी भी कुछ रख छोड़े है और वह जैसे उनका चौधरी है। मतलब यह है कि वह लोग उसकी ऐसी ही इज्जत करते हैं, पर वह काम करने में सबसे आगे रहता है। कहीं काई शराबी शराब पीकर, मतवाला होकर दुनिया के झझटों को भूला हुआ नाला में गिर पड़ा है और इसी वक्त बुलावा आ गया है। प्राण निकल गये, रह गई लाश, वह रात भर नाली में पड़ी दोनों ओर के पानी को मिलने से रोकती रही है। सबेरे किसी नेकदिल आदमी ने मुन्नन को खबर कर दी। मुन्नन के पास अपना काम हल्का करने के वास्ते ठेले हैं जो बड़े हल्के चलते है। उन्हीं में से एक को लेकर वह चल पड़ता है, किसी एक आदमी को अपनी मदद के लिये ले लेता है। फिर वैसे ही मनोयोग से वह उसका काम करता है जैसे उसका अपना कोई आत्मीय हो।'

मुन्नन का कार्यक्षेत्र बड़ा ही विस्तृत है और उसका काम बढ़ने के बड़े-बड़े तरीके निकल आते हैं। कहीं शहर में बीमारी चल गई, प्लेग,

हैजा, चेचक और उसका काम बढ़ गया। गर्मी के दिन में लखनऊ की लू मशहूर है। इधर घर से निकले, लू लगी और लीजिये चल दिये, अब करवाइये उठाने की तैय्यारी। उठानेवालों का यह हाल है कि अब वह समय नहीं रहा जो लोग दिन, दोपहर, रात बिरात दूसरे के आड़े आते थे। अब सब काम सुविधानुसार होता है, आपस में बातें होने लगती हैं—"ऐसे वक्त में जाकर क्या जान देना है और मुझे तो आज सबेरे ही से हरारत है।" जाड़े के दिनों में जाकर नहाने का डर, जुकाम, बुखार का और दफ्तर की गैरहाजरी का भय उन्हें सताता है और अगर जिसके यहाँ मुर्दनी हुई है, वह नगर का रईस अथवा प्रभावशाली नहीं है तो लाश उठाने के वास्ते वह अकेला ही रह जाता है और ऐसे लोगों का भी सहायक होता है मुन्नन।

भाग्यवादी जिसे विधि का विधान कहते हैं और भौतिकतावादी साका, वह भी मुन्नन के लिये काम जुटाने में बड़ा सहायक होता है। कोई ऐसा व्यक्ति है जिसका परिवार भरा-पूरा है, किसी कार्यवश लखनऊ आया है और वहीं मौत हो गई: अथवा कोई ऐसा व्यक्ति है जिसके लड़के-बहू सब हैं, पर नौकरी-चाकरी के कारण बाहर हैं और उसका दम निकल गया, खबर उन तक पहुँच न सकी, ऐसे लोगों का पुरसा हाल भी मुन्नन ही है।

लोगों का ऐसे व्यक्ति के बारे में फौरन ख्याल होता होगा कि इस प्रकार का काम नित्य-प्रति करनेवाला व्यक्ति लगभग हृदयहीन हो जाता होगा, और बात बहुत अंशों में ठीक भी है। मुन्नन का यह कार्य अधिकतर मशीन की तरह होता है, बिना भावुकता के। जो बल उसके कार्य में दिखाई पड़ता है, उसका कारण बहुत अंशों में यह है कि लोग उसे कठोर न समझें, सब के प्रति जो आदर और ममता, मोह का भाव उसके हृदय में है, उसे ठेस न पहुँचे, इसलिये भी वह लाश का काम सम्भलकर करता है। कभी-कभी वह मनाता भी है कि कोई रईस मरे और उसके हत्थे कुछ माल लगे, क्योंकि पैसे की तंगी उसे भी सताती रहती है, जिसका मुख्य कारण है उसका खर-

चीला होना। वह जाते ही मुर्दे का सब कुछ हथिया लेता है। आदमी वह खूब पहिचानता है, अगर देनेवाले हुए तो वह माँग-जाँचकर भी ले लेता है और अगर कंजूस मालूम पड़े तो वह हाथ की सफ़ाई से भी काम लेता है। यह तो दुकानदारी है, वह कहता है, इसमें सब जायज है, जैसे मिले वैसे लेना चाहिये। रोजी है तो रोजा है भैया। लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि मुन्नन अगर अकेला लाश ले जाता है तो कफन भी मार लाता है। वे कहते हैं कि वह डाक्टरी के कालेज में भी लावारिस लाशें बेंच आता है, क्योंकि वहाँ उन्हें इनकी जरूरत पड़ा करती है।

लेकिन ऐसा नहीं है कि भावुकता मुन्नन को छूती ही नहीं है। उसका भी एक पारिवारिक जीवन है, वह उसके हृदय का एक कोमल कोना है। यों उसके दिन का अधिकांश और कभी-कभी रात अधिकांश भाग मुर्दा ढोते, गाड़ते, फूँकते अथवा बहाते बीतता है पर ऐसा नहीं है कि अपने इस कठोर कर्म में उसे अपनी पत्नी की अथवा अकेली लड़की की याद नहीं आती है। वह मुर्दे की कमाई ही खाता है और मुर्दों का कुछ भी ले लेने में उसे परहेज नहीं है पर अपनी बच्ची के विषय में वह बड़ा सतर्क रहता है। काम से लौटने पर जब तक वह ठीक-ठीक मलकर नहा नहीं लेता है, तब तक उसे छूता नहीं है। कैसी सुन्दर-सी है वह बच्ची। उसे देखते ही दौड़ती है, तो वह नहीं-नहीं कहकर उसे दूर हटा देता है। उसे ऐसा प्रतीत होता है जैसे मौत, अशुभ और अमंगल सब उसके बदन में चपटे हुए हैं, कहीं ऐसा न हो कि उसकी बच्ची पर उनकी छाया पड़ जाय। इसलिए जाड़े के दिनों में भी वह घंटों बम्बे के नीचे बैठकर जब तक इस बलाय को दूर नहीं कर लेता है तब तक अपनी बेटी को नहीं छूता। उसे लेकर वह अपने इस अशुभ काम की याद भी नहीं करना चाहता। वह उसे लिये हुए बैठा होता है कुछ क्षणों के लिए यह भूला हुआ सा कि वह क्या करता है। वह पिता है और उसकी गोद में स्नेह-पूर्वक निश्चिन्त बैठी हुई वह लड़की उसकी बेटी है, इतना ही उसे याद रहता है कि कोई बुलावा

उसके लिए आ जाता है—अमीनाबाद पार्क में एक भिखारी मरा पड़ा है, उसे उठाना है। सुनते ही उसका जैसे स्वप्न टूट जाता है, एकदम घबराकर वह अपनी बच्ची को गोद से अलग कर देता है और झुँझला उठता है—मरना, मरना, दिन भर मरना, मैं तो इस काम से आजिज आ गया हूँ। यह गरीब साले तो हर वक्त ही मरा करते हैं। अमीरों को मात भी कम आती है।

तब उसकी पत्नी समझाती है—गुस्सा न करो, अपनी तो रोजी इसी से चलती है। इससे गुस्सा करना ईश्वर से गुस्सा करना है।

पत्नी की बात सुनकर वह चल देता है। उसे वह अप्रसन्न नहीं करना चाहता; क्योंकि इतने कठिन कर्मवाले जीवन में भी वही तो उसके जीवन को सरस और सुविधापूर्ण बनाये रहती है।

उस दिन किसी लावारिस लड़की की लाश इसे ले जानी पड़ी थी, जिसे उसके माता-पिता छोड़कर मर गये थे। उसके नन्हे से शरीर को अपने हाथों में ले जाते हुए उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे वह उसकी बच्ची का ही शरीर है। उसके हृदय में धक् से हो गया और वह एकदम से व्याकुल हो उठा। इसी समय उसे ख्याल आ गया कि यह उसकी बच्ची नहीं है, यह तो वह लावारिस भिखमंगी लड़की है जो मारी-मारी घूमा करती थी और भीख माँगकर खाया करती थी। पर उसकी आँखों से जो आँसू निकलना शुरू हो गये थे, वह बन्द नहीं होते थे। तब उसका साथी कहता है—क्यों चौधरी यह क्या कर रहे हो? वह तो अपना रोज़ का काम है। ऐसा करेंगे तो कैसे चलेगा? न हो, लाओ इसे मैं दफ़न कर आऊँ।

तब वह अपने आपको सयत करने का प्रयत्न करते हुए कहता है—मुझे सब मालूम है रे, मुझे ज्ञान मत सिखा। फिर भी साथी के लाख कहने पर भी वह बच्ची को उसे नहीं देता और उस दिन बहुत ही यत्न से उसका सब कार्य करता है और सबसे छिपाकर अपनी गाँठ से भी कुछ इसके काम में लगा देता है। यहाँ तक कि उसका चिर-परिचित श्मशान में खोदनेवाला भी यह ताड़ जाता है कि आज कुछ

खास बात है और वह पूछता है—क्यों आज क्या हुआ चौधरी तुम्हें ?

'कहाँ कुछ नहीं तो' कहकर वह अपनी करुणा पर जैसे लज्जित हो जाता है।'

उस दिन घर पहुंचकर वह फिर वैसे ही घंटों तक नहाता रहा, धुले कपड़े पहिनकर अपनी बिटिया को गोद में बिठाकर खूब ही प्यार किया और प्यार करते-करते रोने लगा। बार-बार उसके मन में आता है कि कहीं ऐसा हो जाये तो. यह बात मन में आते ही वह फफक-फफककर रोने लगा। जितना ही वह इस ख्याल को दूर करने का प्रयत्न करता, उतना ही वह बार बार उसे आकर सताता और वह रोने लगता। उसे रोते देखकर उसकी बच्ची भी रोने लगी।

यह रोना धोना सुनकर गृहस्थी के काम में लगी हुई पत्नी आ गई और पूछने लगी—क्यों क्या हुआ ? यह रो क्यों रहे हो, अच्छे भले दिन ?

'कुछ नहीं या ही' ककहर वह इस जगह से टल जाता है। और करे भी क्या, उसके मन में जो चोर बैठ गया है उसका ज़िक्र वह किससे करे। अपनी बच्ची को, अपनी पत्नी को वह अपने इस अमंगल कार्य व अशुभ विचारों से दूर ही रखना चाहता है। यह तो वह ही समझता है कि इसके जीवन का एक भी दिन अच्छा भला नहीं कहा जा सकता।

दुनिया भी कैसी विचित्र है। उस दिन धर्मशाला से एक लाश उठाने के वास्ते उसका बुलावा आया। बिलकुल जवान वह लड़की थी और बला की सुन्दर। धर्मशालावालों से मालूम हुआ कि दो रोज हुए एक आदमी के साथ वह आयी थी और यहाँ ठहरी हुई थी। उस दिन शाम को न जाने क्या चीज़ लाने का बहाना करके वह जो गया, तो लौटा ही नहीं। बड़ी रात तक फाटक बन्द हो जाने पर भी वह उसकी प्रतीक्षा करती रही, बार-बार फाटक पर देखने के लिये आती कि वह आया तो नहीं है। फिर वह अपनी कोठरी में जाकर सो रही। सबेरे जब

बहुत देर तक कोठरी नहीं खुली तो कुल्हाड़ी काटकर दरवाज़ा खोला गया। वह मरी पड़ी हुई थी, उसने कुछ खा लिया था, ओंठ उसके स्याह पड़ गये थे, बदन पर भी कुछ कालिमा आ गई थी, मुँह पर तड़प-तड़पकर प्राण देने की अन्तिम यातना के चिन्ह थे। धर्मशाला के तजुर्बेकारों का कहना था कि वह पुरुष सम्भवतः उसका प्रेमी था, जो शायद उसे उसके घर से भगाकर लाया था। उसका बच्चा उसके पेट में था। वह उसे इस असहाय अवस्था में छोड़कर चला गया था। इसी से परेशान होकर उसने अपनी जान दे दी थी। मुन्नन को उस लाश को पोस्टमार्टम के वास्ते अस्पताल ले जाना पड़ा था। जिस समय उसे उठाकर उसने अपने ठेले पर रखा तो उसने देखा कि उसके सुन्दर मुख और बड़ी-बड़ी आँखों में मृत्यु-यातना के चिन्हों के अतिरिक्त भोलेपन का एक न्यारा साम्राज्य था। उसे विश्वास भी था कि बेचारी अवश्य ही बड़ी भोली रही होगी, अन्यथा इस प्रकार क्यों छली जाती। उस मुख का और उन आँखों का भोलापन उसे अपनी पत्नी के भोलेपन से बहुत मिलता-जुलता-सा लगा था और उस वक्त में उसका मन बहुत व्याकुल-सा हो उठा था। अजीब-अजीब चित्र उसकी आँखों के सामने फिर रहे थे। कभी उस स्त्री का वह सुन्दर मुख मृत्यु-यातना के चिन्हों सहित दिखलाई पड़ता और कभी उन्हीं चिन्हों में अंकित होकर उसकी पत्नी का मुख उसके सामने आ जाता। वे बड़ी बड़ी आँखें कभी हँसी हों, कभी उसकी पत्नी के मुख पर लगकर उसके मस्तिष्क में चक्कर लगाती।

उस दिन रात हो जाने पर वह अपने घर लौट पाया था। नहा-धोकर जैसे-तैसे पत्नी के परेशान होने के डर से पेट को धोखा देकर वह अपने बिछौने पर जा लेटा। जब उसकी स्त्री आई तो वह बहुत ही व्याकुल होकर उसे अपनी भुजाओं में लपेटता-लपेटता, चूमता-चूमता अधीर हो उठा। उसे जैसे ऐसा मालूम होता था कि वह उसकी बाहों से निकलकर कहीं दूर चली जा रही है। कितना महत्त्वपूर्ण अंश उसके जीवन का उसकी स्त्री है, यह वही जानता है। लाश लखनऊ में

कानपुर गंगाघाट पहुँचाने वह पूरी-पूरी रात अपना ठेला लिये चला जाता है। अपने इस दुखद भयंकर कर्म को अपनी पत्नी की स्मृति द्वारा ही तो वह सरल बना लेता है। घर के द्वार पर उसकी पत्नी की प्रतीक्षा करती हुई दो आँखें ही तो उसके पैरों में पर लगा देती हैं और वह लगातार अट्ठारह-अट्ठारह घण्टे पचास-पचास मील चलता है। ऐसी है उसकी पत्नी, जिसने कभी उसकी आँख से आँख नहीं मिलाई है, कभी उसकी बात को जिसने नहीं दुलखा है और अपने पति की प्रतीक्षा को ही जो अपने पति से अधिक पा सकी है। ऐसी पत्नी को उसकी कल्पना ने मृत्यु के चिन्हों से लपेट दिया है और वह व्याकुल हो उठा है। पत्नी के लाख पूछने पर भी वह उसे कुछ नहीं बता सका है और शायद कभी न बता सकेगा।

दिन-रात मृत्यु और शवों के बीच रहते रहते मुन्नन के आस-पास मृत्यु का छाया मँडराती रहती है और जब उसके आत्मीयों को भी जैसे वह अपने पंखों में समेटने लगती है, तभी वह व्याकुल हो उठता है। सोचता है ऐसे जीवन से तो मृत्यु ही अच्छी। पर मृत्यु की बात ही क्या, मृत्यु की वह कल्पनात्मक छाया भी जो उसके आदमियों को परिवेष्टित करके उसे दुखी किया करती है, उसे अपनी गोद में नहीं लेती। दिन-प्रतिदिन भावुकता के यह दौरे उसे ज्यादा आने लगे हैं और यह उसके जीवन के सबसे दुखद पहलू हैं।

उस समय जब बिचई की लाश उठाने के वास्ते बुलाने को छोटे पहुचा तो मुन्नन बैठा अपने साथियों से बातें कर रहा था। मँहगाई पर बातचीत हो रही थी। कुन्दू ने कहा—मेरा तो यह हाल है कि जब चौधरी की दया से कुछ काम मिल जाता है तो एक दिन दोनों जून रोटी पक जाती है, वर्ना किसी तरह जोड़-गाँठ के, माँग-जाँच के एक समय सुबह-शाम के बीच खा लेते हैं, जिससे दोनों वक्तों को धोखा रहे।

मुन्नन चौधरी ने कहा—मैं क्या बताऊँ रे, मैं तो समझता था कि अब हम लोगों के भाग जागे। सुना था विलायत के किसी देश में लोग अपने घर के मुर्दे लेकर अब नहीं जाते हैं, कहते हैं इसमें क्या

रखा है, सब खत्म हो गया अब इसके साथ मोहब्बत क्या। वहाँ कम्पनियाँ खुली हुई हैं, जो यही मुर्दों का काम करती हैं, उन्हीं को टेलीफ़ोन कर दिया जाता है, वह लोग मोटर लेकर आ जाते हैं, बँधा हुआ खर्च का रुपया ले लेते हैं और लाश को ले जाकर ठिकाने लगा देते हैं। छुआ छूत का विचार लोगों के दिल से जा रहा है, पहले तो लाश हम लोगों को छुआना बुरा समझते थे, अब उतना परहेज तो नहीं रहा। विलायत के लोगों जैसा ही यहाँ भी लोगों का ख्याल हो जाता, तो मैं एक कम्पनी खोल देता, फिर चुनिया का ब्याह खूब ठाट-बाट से करता। मँहगाई ने सब चौपट कर दिया। अमीरों को होने लगे फायदे तो उन्होंने तो जैसे मरना ही मुल्तवी कर दिया, सोचा यह मुनाफाखोरी का वक्त है मरने का थोड़े ही। उनके मरने पर कुछ मिलता भी था, सो वह भी गया। रह गये गरीब उनको होने लगे फ़ाके, सो वह दिन भर मरने लगे, बस ढोया करो और मिलने के नाम पर यही कि खोदा पहाड़ तो निकला चूहा। ऐसी हालत में क्या मैं खाऊँ और क्या तुम लोगों को खिलाऊँ। मुझे तो अब फिक्र यह होने लगी है कि यही हाल रहा तो चुनिया का ब्याह कैसे करूँगा। भेजो भगवान किसी रईस के नाम परवाना।

इतने में पहुँच गया छोटे। चौधरी का मुख एकदम आशा-ज्योति से चमक गया, मालूम होता है भगवान् ने सुन ली। बातचीत हुई तो उत्साह भंग हो गया। रुपये-पैसे का डौल पूछा, तो छोटे कहने लगा—यों तो बहुत बड़े रईस का नौकर है, देना चाहें तो हज़ार उनके लिए कुछ नहीं है, तुम्हारे माँगने की तरकीब पर है। वैसे अगर वह कुछ न देंगे तो हम लोग जो कुछ तुम कहोगे, उससे बाहर न होंगे।

मुन्नन ठेला लेकर चल दिया।

* * *

'गंगा माई बनाये रखें, चोले आबाद रहें'—की आवाज़ मोहल्ले भर में गूँज उठी। पड़ोसी लोग निकल-निकल कर चबूतरों पर खड़े हो गये। नौकर ने जाकर राय साहब को खबर दी, लाश उठानेवाला

मेहतर आया है। ऊपर की खिड़की खोलकर वह गरजे—'क्या है रे?'

'सलामत रहिए हुजूर, नौकर की लाश सड़ रही है, मुझे हुक्म मिले तो उठा ले जाऊँ, बीमारी का घर। पेट के लिए हमें भी कुछ मिल जाये। आपकी खैर मनायेंगे।'

राय साहब ने दस रुपये का एक नोट फेंक दिया, और अन्दर चले गये। मुन्नन ने झुक-झुककर सलाम की और अपना काम देखने चल दिया।

मुन्नन सहायक रूप में एक लड़का भी अपने साथ लाये थे। उन दोनों ने पहला काम जो किया वह यह था कि लाश के आस-पास रखी हुई सब चीज़ों को छूकर उन सब पर अधिकार स्थापित कर लिया। सिरहाने रखे हुए गिलास को एक नौकरानी मना करती रही कि—'उसे न छूना, वह हम अपने मेहतर को देंगे।' पर मुन्नन कब सुनते हैं। गिलास भी लड़के के हाथ बाहर भिजवाते हुए कहा—'वाह मालकिन ऐसा कहीं हो सकता है, यह हमारा हक है, गंगा माई बनाये रखे।' मुन्नन ने लाश की कमर टटोली, जेबों में हाथ डालकर देखा और जो कुछ मिला बिला तकल्लुफ अपने गाँठ के हवाले किया। नीचे बिछी हुई दरी, ऊपर पड़ा हुआ लिहाफ़ भी उन्होंने बाँध लिया।

मोहल्ले के किसी तमाशबीन ने घृणा से मुँह फेरकर कहा—इसीलिये तो लोग इन्हें कफन-खसोट कहते हैं।

दूसरे ने कहा—अगर यह न करें तो जीव कैसे जियें।

छोटे ने चाचा से कहा—क्यों चाचा इसके साथ चलना चाहिए, नहीं तो पता नहीं यह लाश क्या करे। सुना है यह लोग अस्पतालवालों के हाथ बेच देते हैं।

'हाँ, हाँ, चलो मैं भी चला चलूँगा।'

छोटे ने मुन्नन से कहा—भैसाकुण्ड ले चल रहे हो न लाश, चलो हम भी आते हैं।

'हाँ हाँ आइये'—उत्तर मिला।

शव के मामलों में कभी-कभी हम जीवितों से भी अधिक भावुक हो उठते हैं। लाश को ठेले की सख्त लकड़ियों पर रखे जाते देखकर छोटे ने कहा—भाई वह लिहाफ बिछा लो वह तो तुमको मिल ही जायगा।

मुन्नन ने कहा—बाबूजी यों ही आनन्द है। अब वहाँ कौन है तकलीफ़-आराम महसूस करनेवाला। अच्छा बाबूजी भैंसाकुण्ड आइए, आप तो इक्के पर आइएगा, एक-आध घण्टे बाद चलियेगा। हमें काफ़ी चलना है अमीनाबाद से भैंसाकुण्ड—यह कहकर रामदयाल चल दिये।

बहुत तेज इक्के पर पहुँचने पर भी, पाँच मिनट भी न बीत पाये होंगे कि मुन्नन ठेला लिये पहुँच गये। 'क्यों मालिक क्या बहुत देर हुई आये हुए?'

'नहीं भाई अभी-अभी आ रहे हैं, तुम खूब तेज आये। हम लोग यह नहीं समझते थे कि इतनी जल्दी पहुँच जाओगे।'

'यहाँ की तो कोई बात नहीं मालिक, हम लोग लखनऊ से अट्ठारह घण्टे में कानपुर लाश पहुँचते हैं। आप इसी वक्त शाम को सात बजे लखनऊ में लाश हमको दीजिये और दिन में ग्यारह बजे की जो गाड़ी कानपुर पहुँचती है, उसके वक्त पर लाश लीजिये। मजाल है जो पिछड़ जायँ। यह हमारी हवागाड़ी जो है'—अपने ठेले की तरफ़ इशारा करके उन्होंने कहा—बिजली समझिये इसे।

श्मशान में सब लोग मुन्नन को पहिचानते थे। लाश को गड़वाना था, क्योंकि मँहगी का वक्त था, लकड़ी रुपये की बीस सेर थी, अब फूँकने का श्रेय अमीरों को ही मिल सकता था। मुन्नन खोदनेवाले को देखने गये तो मालूम हुआ कि वह अभी एक लाश को ढाँक रहा था, दस-पाँच मिनट में आयेगा। आकर कहने लगे—बाबूजी आर्य-समाज ने हम लोगों का पेट बहुत काट रखा है, जितनी लावारिस लाशें मिलती हैं, उनके उठाने का हमें कुल छः रुपया मिलता

है, उसमें ही सब कुछ करना होता है। इतने में पेट नहीं पलता बाबूजी। सेन्ट्रल और डिस्ट्रिक्ट जेल का भी जितना काम होता है, सब हमी को मिलता है बाबूजी। बड़े-बड़े डाकुओं को जिनको फाँसी होती है या जो जेल में अपना मौत मर जाते हैं, मैं ही ठिकाने लगाता हूँ। जिस वक्त कोई लाश लेने जेल में जाता हूँ तो बुड्ढे मुझे देखकर रोने लगते हैं, कहते हैं—"मुन्नन एक दिन हमें भी इसी तरह पहुँचा देना भैया!" तो मैं कहता हूँ तुम्हारी लाख बरस की उमर हो भैया, काहे को वह दिन आवे पर जो आ ही जाय तो मैं पीछे न रहूँगा। अभी—डाकू की फाँसी की खबर अखबार में निकली थी कि अगले महीने में होगी, पर उसे फांसी हो चुकी, उसकी लाश को मैंने ही जलाया था। उसकी घरवाली मुझे ढूँढ़ती हुई पहुँची। दस रुपये सिर्फ जहाँ जलाया था, वहा बताने के लिए इनाम के दिये और फूल इकट्ठा करके दुआ देती हुई चली गई। इन हाथों ने न जाने कितने देशभक्त, डाकू, चोर, शराबी और लावलद रईस मरघटे पहुचा दिये।

मुन्नन और न जाने क्या-क्या कहते कि छोटे ने प्रश्न कर दिया—यह काम तो अच्छा नहीं है मुन्नन तुमने इसे क्यो शुरू किया? कुछ और करते।

'इसमें भा एक राज है बाबूजी, कहते ही कहते मुन्नन का गला भर आया, आँखों में आँसू झलकने लगे, पर उसने कहना जारी रखा—मेरे एक ही लड़का था, बाबूजी! मेरे सामने न कभी खाट पर बैठता था, न हुक्का पीता था। मेरा इतना अदब करता था कि कभी सामने बात न करता! जो कुछ मुझसे कहना होता, खुद न कहकर अपनी माँ से कहलाता था। हम दोनों ऐसे लड़के को पाकर अपने को धन्य समझते थे। बड़े लाड़-प्यार से पालकर उसे बड़ा किया था। था भी वह ऐसा जिसे देखकर भूख-प्यास मिट जाती थी। इतना सुशील कि मालूम होता था कि किसी राजा--रईस का लड़का हो। हमारे यहाँ लोग बात पीछे गाली देते हैं, पर उसके मुँह से किसी ने गाली का एक लफ्ज भी न सुना था। अब क्या उसकी तारीफ़ करूँ

बाबू जी ; कोई देवता था जो हमारे यहाँ आया था और हम लोग उसकी कद्र न कर सके। एक साहब की उस पर मेहरबानी हो गई, कोई बड़े आदमी थे, कहने लगे—चल तुझे कलकत्ते में बहुत अच्छी नौकरी दिला देंगे। उसने मुझसे पूछा, मैंने भी लालच में आकर इजाजत दे दी। क्या जानते थे कि अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार रहे हैं। वह वहाँ चला गया। चिट्ठियों में लिख-लिखकर भेजता था कि तुम्हारी और अम्मा की बड़ी याद आती है ; पर तनखा अच्छी है, सोचता हूँ तुम दोनो की सेवा करने का कुछ मौका मिला है तो क्यों चूकूँ। हमारे लिए हर महीने मनीआर्डर भेजता था। हम वैसे ही बड़े भले थे, वह रुपया भेजने लगा तो दारू पीने लगे। कई साल इसी तरह सुख में बीते। बड़ा घमण्ड था हमें। हम लोगों में ऐसे लड़के दिया लेकर ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलते हैं। दो-तीन बार वह आया भी। बड़े मज़े में था, फिर चला गया। रोकते कैसे, हमें तो रुपये की चाट थी।

'फिर एकदम से चिट्ठी और रुपया दोनों आना बन्द हो गया। चिट्ठी डाली तो कोई जवाब नहीं, दो महीने हुए, चार हुए, छै हुए, तब मैं और उसकी माँ दोनों कलकत्ते पहुँचे। बड़ी मुश्किल से पता लगाकर पहुँचे, तो मालूम हुआ कि हम लोगों की तक़दीर लुटे कोई दो महीने बीत गये। उसकी माँ ने जैसे ही सुना, वहीं बेहोश होकर गिर पड़ी। मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे किसी ने सीने पर हथौड़ा मार दिया हो। बाबूजी पुत्र-शोक बड़ा ज़बर्दस्त होता है'—कहते-कहते मुन्नन की हिचकियाँ बँध गईं, 'पर क्या करते, अपने दुःख को दबाकर किसी तरह घरवाली को सम्हाला, वह तो पागल हो रही थी। पूछने पर मालूम हुआ कि सिर्फ़ बुखार आया था, उसीमें सन्निपात हुआ और सबेरे देखा तो सब कुछ खत्म हो चुका था। लाश तीन दिन तक पड़ी सड़ती रही, बिरादरीवाले भी न खड़े हुए, तब सरकारी डोम उठाकर ले गये।' मुन्नन का बुरा हाल था—मेरे दिल में बड़ी गहरी चोट लगी। उस दिन से मेरी ज़िन्दगी का रवैया बदल गया, शराब छूट गई और अब मैं लावारिस मुर्दे ढोता घूमता हूँ, कोई कुछ दे देता है तो उसकी खैर

मनाता हूँ—नहीं तो अपने बेटे की याद में यह काम तो किये ही जाता हूँ।'

प्रत्यागत

कानपुर जिले में बाँदा लाइन पर स्थित बिधनू स्टेशन से लगभग एक डेढ़ मील की दूरी पर कठेरुआ गाँव है। यही गाँव सकेलू की जन्मभूमि थी जहाँ उसने जन्म के बाद के बीस-इक्कीस वर्ष व्यतीत किये थे। इस गाँव के आम और जामुन के पेड़ उसके जीवन से कितना मिल गये थे, इसका अनुभव एक ग्रामीण ही अधिक कर सकता है। गाँव के पास ही बहनेवाली नदी में उसने कैसे उत्साह से जलक्रीड़ा की थी, गाँव के खंडहरों में अपने साथियों के साथ उसने छुई-छुवौअल में कैसा आनन्द उठाया था, और मन्दिर के चौतरे पर बैठे हुए रामायण की कथा उसने भक्ति-भाव से सुनकर अपने भगवान से उसकी परिस्थिति के अनुकूल बनाये रखने की कितने बार प्रार्थना की थी, यह सब सकेलू अपने जीवन में भुला नहीं सकता।

अपने गाँव से इतना प्रेम होते हुए भी सकेलू शहर में जाने को क्यों इतना उत्सुक है, यह एक कौतूहल का विषय था। बात यह थी कि सकेलू ने इस साल मक्का बोई थी, और उसकी मक्का हुई भी ऐसी थी कि पास से जानेवाले उसके खेत की ओर देखते ही रह जाते। सकेलू और उसकी स्त्री ने रात-दिन एक करके मक्का की रखवाली की और अपनी मेहनत का लहलहाता फल देखकर फूले न समाये। लेकिन परमात्मा से उनकी प्रसन्नता न देखी गई। मक्का पकने का समय आया ही था कि एक रात ऐसे जोर का पाला गिरा कि सकेलू के सारे मनोरथों पर पानी फिर गया। कपाल पीटकर सकेलू रह गया।

उस साल गाँव में एक नई बात हुई। पुराने जमाने के आदमी मेल-मुलाहिजा माननेवाले मातादीन वाजपेयी (गाँव के जिमींदार) का

पुत्र अंग्रेजी पढ़कर अपने पुराने संस्कारों को मिटाकर गाँव में आया था। वह अंग्रेज से अधिक अंग्रेज था और बेपढ़े-लिखे गाँववालों से अंग्रेजों से अधिक घृणा करता था। गाँववालों के दुर्भाग्य से वह आया भी उन दिनों में, जब लगान वसूल करने के दिन आये। बाप की ढिलाई देख कर उसने वसूली का काम अपने जिम्मे लिया और डण्डे के जोर पर लगान वसूल होने लगा। बड़े-बड़े माननीय व्यक्तियों की प्रतिष्ठा धूल में मिला दी गयी। वाजपेयीजी बेचारे यह सब होते देखते, पर एकलौते लाड़ले बेटे से कुछ कह न सकते।

सकेलू का भी वही हाल हुआ। जमींदार के लड़के ने बुलाकर उस से गाली देकर लगान माँगा। वह बिगड़ उठा। इस प्रकार की बात-चीत सुनने का वह आदी न था। जोर से बोला—'महाराज गाली क्यों देते हो ? रुपया पास में होता, तो आप के गुलामों को दे देते, जब कुछ हुई नहीं तो दें कहाँ से ?' जमींदार का पुत्र इतनी बे-अदबी कैसे बर्दाश्त करता ? एक पासी को बुलाकर बोला—'लगाना तो पचास जूते इस बदमाश के।' मार खाकर सकेलू बेहोश होकर गिर पड़ा।

उसी दिन शाम को सकेलू दिया जले जमींदार साहब के यहाँ गया; वह बेचारे गाँव वालों पर किये गये अत्याचार को सुनकर आँसू बहा रहे थे। इतने में सकेलू ने पहुँचकर पालागन किया और बिदा माँगी। बूढ़े वाजपेयीजी अपने असामियों के सुख-दुख में सदा शरीक होते थे। सकेलू की बात सुन दुखी होकर बोले—'बेटा मुन्नू कोई हमेशा तो यहाँ रहेगा नहीं। वह तो दो तीन महीने का मेहमान है। अबकी जो गुजर रही है, सह लो। इसके बाद तो फिर हम हैं और तुम हो। शहर की जो तुम बात कहो तो वहाँ भी फूल नहीं बिछे हैं। यहाँ तुम अपने काम के मालिक हो, वहाँ तुम्हें दूसरों का मुँह ताकना होगा।' वाजपेयीजी ने बहुत समझाया : परन्तु सकेलू न माना। उसके सामने ऐसे कई उदाहरण उपस्थित थे, जब गाँव से शहर में जाकर लोग बहुत अच्छी हालत पर पहुँच गये थे और गाँववालों से लाख दर्जे अच्छी दशा में थे। उसी दिन रात में अपने सामान की गठरी लाठी में टाँगकर आगे-आगे सकेलू

और पीछे-पीछे उसकी स्त्री चली। रात अँधेरी थी और ठण्ढी हवा शरीर में कँपकँपी पैदा करती थी। सकेलू का बच्चा जाड़े के मारे कुनमुना-कुनमुनाकर अपनी माँ से लिपट जाता था। राम-राम करके स्टेशन आया। गाड़ी में जाकर बैठ गये। एक गुदड़ी बिछाकर बच्चे को लिटा दिया। गाड़ी ने लम्बे-लम्बे डग बढ़ाकर उन्हें निर्दिष्ट स्थान पर शीघ्र ही पहुँचा दिया।

* * *

लखनऊ में अमीनाबाद के चौराहे से एक सड़क गोशनदौला कचहरी की ओर जाती है। चौराहे से करीब दो सौ गज चलने पर दाहिनी हाथ को उतर कर ढाल पर एक गली चली गई है। उस ढाल के ऊपर ही सड़क के बराबर कुछ खाली जगह पड़ी है, उस पर एक बरगद का पेड़ साया करता है। अपनी स्त्री को एक धर्मशाला में ठहराकर सकेलू अपने सोचे हुए काम के लायक एक जगह ढूँढने निकला। सहसा उस स्थान पर दृष्टि पड़ी। सब बिलकुल ठीक। मालिक का पता लगाया। जमीन के मालिक श्रीवास्तव बाबू बड़े सज्जन आदमी थे। भगवद्भक्त सकेलू को जगह मिल गई। प्रसन्न मन धर्मशाला लौटा और स्त्री को अपनी सफलता का समाचार सुनाया।

सकेलू मेहनती आदमी है। तकलीफ में पड़कर उसे अपनी स्त्री की जो हँसली तुड़वाना पड़ी है, वह उसे लखनऊ में जमा देने के लिये बहुत काफी है। बाँस मण्डी से सामान लाकर अपने ही हाथों पहले तो रहने को दो दिन में मड़ैया तैयार कर ली। अब वह लकड़ी की ठेकी का सामान जुटाने लगा, कभी इस गाँव जाता कभी उस गाँव। दूर-दूर के जङ्गलों में जाकर ठेकेदारों से मिला, और एक महीने के अविरल परिश्रम से उसकी ठेकी ठीक जम गई। ढाक, बनकट, बबूल, आम, चिरौंजी सब तरह की सूखी लकड़ी उसने खूब जुटा ली। सकेलू एक तो तगड़ा, दोहरे बदन का आदमी था, फिर गजब का मेहनती, दिन भर कुल्हाड़ी लिये चैले चीरा करता।

पन्द्रह बीस दिन में ही उसके ग्राहक बढ़ने लगे। लकड़ी के एक

ठँठ पर वह बैठा रहता। ग्राहक के आते ही भली प्रकार से राम-जुहार करके माँगी हुई लकड़ी तौलता और फिर स्वयं ही लादकर ग्राहक के पीछे-पीछे लकड़ी पहुँचाने जाता। जब तक वह बाहर रहता, टट्टर की आँड़ में बैठी उसकी स्त्री देख-भाल किया करती। लकड़ी के रुपये और मजदूरी के पैसे लेकर जब वह माथे का पसीना पोंछता हुआ उसी ठँठ पर आकर बैठता, तो उसकी स्त्री एक हाथ में पानी का लोटा, और दूसरे में ताजा किया हुआ हुक्का लिये घूँघट की ओट में मुसकराती हुई आती। सकेलू का बच्चा भी उस समय मड़ैया में से घिसलता हुआ आता और उसकी पीठ के सहारे खड़ा होकर लार चुआने लगता। तब अपनी स्त्री के हाथ में रुपये देते समय उसकी मुसकराहट देखता हुआ वह अपने को स्वर्ग में ही समझता। मजदूरी और लकड़ी का दोहरा फायदा पाकर स्त्री-पुरुष दोनों फूले न समाते।

* * *

साल बीतते-बीतते दूकानदारी बढ़ गई। अब अकेले सकेलू से सारा काम नहीं सँभलता—एक मजदूर रख लिया गया है। लकड़ी डालने अब वही जाता है, और दोपहर में लकड़ी भी वही चीरता है। सकेलू अब ज्यादातर दूकान पर ही बैठा हुआ हुक्का पिया करता है। ऐसे ही छठे-छमासे तगादे पर जाता है। दूकानदारी के बढ़ने के साथ अब इन लोगों का मन भी बढ़ने लगा है। सकेलू का कुर्ता अब मैलखोरे रङ्ग के गाढ़े का नहीं है। अब वह मिल के बढ़िया कपड़े की कमीज पहनता है। उसी तरह उसकी स्त्री भी सामने रहनेवाली चिकवालियों के फैशन देखकर बढ़िया मखमली किनारे की धोती पहनने लगी है। स्लीपर और क्लिप की भी उसे अब आवश्यकता पड़ती है। बच्चे के लिये भी बाजार से सिले-सिलाये फ्राक आते हैं, जूते-मोजे आते हैं। नौकर भी अब एक से दो गये हैं। दूसरा नौकर कभी-कभी दूकान के काम में मदद देता है। लेकिन वास्तव में है वह सकेलू और उनकी स्त्री का ही नौकर। वह बाजार से सौदा-सुलुफ जाता है, बच्चे को घुमाता है, झाड़ू-बुहारू करता है और धोती वगैरह छाँटता है। उनके खाने-पीने में भी इसी तरह की

तबदीली हो गई है। उनका बच्चा अब सबेरे उठकर धरी हुई रोटी के स्थान पर जलेबी और हलुवे की रट लगाता है।

सकेलू अब एक जगह बैठे-बैठे मोटा होगया है। उससे मेहनत का काम नहीं होता। दूकान क़रीब-क़रीब नौकरों के जिम्मे चलती है। सकेलू की स्त्री भी अब ऐसा-वैसा काम नहीं कर सकती। इतनी बड़ी दूकान की मालकिन होकर क्या वह बर्तन माँजेगी। इसलिए बर्तन माँजने की महरी आती है। सकेलू का लड़का भी शहर की हवा खाकर अब पान-फूल की तरह नाजुक हो गया है। जब-तब बीमार पड़ जाता है। दो-चार रुपये की दवा का उसका भी महीना बँध गया है?

* * *

नौकरों के जिम्मे दूकान छोड़कर सकेलू इतना बढ़ा हुआ ख़र्चा चलाना चाहता था। ख़र्च के माफिक अब फायदा होता न था। दो-दो नौकरों की तनख्वाह निकल जाती। दूकान की बिक्री और दूकान-मालिक के ठाट-बाट देखकर श्रीवास्तव जी भी अपना लोभ संवरण न कर सके, उन्होंने ज़मीन का किराया दुगुना कर दिया था। वह सब ख़र्चे और सकेलू की गृहस्थी का ख़र्चा! रुपया आने का जरिया सिर्फ दूकान। खर्चा बढ़ने पर घटना यह बड़ी कठिन बात होती है। दूकान के मुनाफे से काम न चलता था। धीरे-धीरे दूकान की पूँजी पर हाथ पड़ने लगा।

पेड़ के तने में घुन लगा। पोला होते-होते चरमराकर एक दिन बैठ गया। तब सकेलू और उसकी स्त्री की आँखें खुलीं। चारों तरफ अँधेरा दिखाई देने लगा। दूकान में पचीस पचास की लकड़ी छोड़कर और कुछ बाकी न रहा था। खर्चा मारे डालता था। अथाह जल में पड़े हुए इधर उधर हाथ-पैर मारने लगे। डूबने की पूर्ण सम्भावना थी कि गाँव का सहारा याद आया। दोनों की समझ में बात बैठ गयी। बची-खुची लकड़ी औने-पौने दाम पर एक समव्यवसायी के हाथ बेच, बोरिया-बँधना-बाँधकर वे लोग एक बार फिर अपने गाँव की तरफ रवाना हुए।

कठेरुआ पहुँचकर सकेलू वाजपेयीजी के पैरों पर जाकर गिर पड़ा। बुड्ढा बड़ा तजुर्बेकार था और दुनिया देखे बैठा था। तह तक पहुँच गया। सकेलू को सान्त्वना देते हुए बोला—'बेटा, रञ्ज किस बात का, कगार के पासवाली दो बीघा जमीन खाली पड़ी है। घुइयाँ बो देओ तो रुपया ही रुपया बरस पड़ेगा। तब तक खाने के लिये अनाज हमारे घर से लेओ।'

सकेलू को फिर ग्रामीण बनने में काफी कठिनाई हुई। पर धीरे-धीरे आदत पड़ने लगी। अब वही मोटा-झोटा खाते-पहनते हैं, और कसके मेहनत करते हैं। लखनऊ की जलेबी, हलुवा धीरे-धीरे भूलने लगे हैं। वाजपेयीजी की कृपा बनी ही रहती है। उनका लड़का मुन्नू इस साल गाँधी महात्मा का चेला बनकर लौटा है। सबसे अपनी बेवकूफ़ी की माफी माँगता फिरता है। सकेलू को मुन्नू का ही सबसे बड़ा डर था। उसकी बदली हुई मनोवृत्ति देखकर वह अब सब तरह सुखी हो गया है।

चौबे

चौबे मथुरा से आया है या नहीं यह तो कोई नहीं जानता पर कहते उसे सब लोग चौबे ही हैं। शहर की किसी गुल्जार और चौड़ी जगह में एक अजगर को गर्दन में डाले हुए चौबे कहता है:—"भाइयो, लोग कहते हैं कि सुना है पर देखा नहीं कि पहाड़ पर बिच्छू पत्थर पर डंक मारता है तो पत्थर का संखिया बन जाता है, वह बिच्छू देखिये यह है।" यह कहते ही एक बड़े डब्बे में से काले काले पाव भर बिच्छू वह सड़क पर डाल देता है। एक थैली खोलते हुए वह कहता है। "लोग कहते हैं नाग पञ्चमी को नाग को दूध पिलाते हैं। भाई मेरे, नाग ऐसी चीज नहीं कि हर बीन वाला उसको पकड़ लावे, नाग वह बसर है कि जिस वक्त आदमी को काट लेता है तो आदमी बोलता चालता

कुछ नहीं बस झूमता है तड़पता है और दम पाँच मिनट के अन्दर मर जाता है। एक बार कहिए—जै भंगेड़ी भोलानाथ की और देखिए नाग असली और जैसे ही वह उस सांप के सिर में हल्के हाथ से जरा चोट कर देता है वह इतनी जोर की फुफकार मारता है कि गजों दूर खड़े हुए लोगों की नानी मर जाती है। तब वह एक लकड़ी से अपने सामने दस बारह गज का एक घेरा बनाते हुए वह कहता है—"डरिये नहीं भाइयो भगवान भोलानाथ की दया से जब तक खाकसार इस जगह मौजूद हैं यह सब केचुओ से बदतर हैं। आइये चन्द बातें इस नाचीज की भी सुनिए। और भोलानाथ के नाम पर मुफ्त बिच्छू व साँप की वह कारगर दवायें ले जाइये कि जिनकी महज खुशबू से साँप बिच्छू कोसो दूर भागते हैं। आपसे मुझे कुछ लेना नहीं है मैं कोई भोले-भाले देहातियों को मूड़कर पैसा कमाने वाला दवाफरोश नहीं हूँ। हमारी कलकत्ते की सर्पारि कम्पनी के मेरी तरह के सैकड़ों नुमाइन्दे हजारों रुपये की दवा शंकर के नाम पर अपने देश भाइयों की जानें बचाने की गरज से मुफ्त बाँट देते हैं।

लोग उसकी जोरदार आवाज, इतने बड़े बड़े साँप, बात बात में शंकर व भोलानाथ, और मुफ्त दवा का नाम सुनकर इकट्ठा होने लगते हैं और वह कहता है—"भाइयो बंगाल का हरा साँप, उड़ने वाला दो मुँहा साँप, एक हजार वर्ष की उमर वाला एक बालिश्त का साँप और देखिये। इन जहरीले जानवरों से बचने की अक्सीर दवा मुफ्त लीजिये और भोलानाथ का नाम लेते हुए अपने घर चले जाइये। अगर मैं कुछ आपसे माँगूँ तो मेरे मुँह पर थूक दीजिये।

भाइयो लोग कहते हैं कि बिना दाँत तोड़े कोई साँप नहीं रख सकता। बाबा भोलानाथ की दुआ से मेरे पास ज्यादा नहीं तो एक ठेला साँप तो हैं ही और अगर इन साँपों में कोई भाई, वह खूब चिल्ला-कर कहता है टूटे दाँत वाला साँप निकाल दे तो ज्यादा तो नहीं सौ रुपये मैं इनाम के नजर कर सकता हूँ और वह नोटों की बँधी हुई एक गड्डी सामने जमीन पर फेंक देता है।

लोग खूब ध्यान से श्रद्धापूर्वक उसकी बातें सुनने लगते हैं। अनेकों तरह के रंग बिरंगे और डरावने साँप दिखाकर वह कहता है बिच्छू की यह दवा हमारी कम्पनी का पहला तोहफा है जो हर हिन्दू मुसलमान भाई को हमारी कम्पनी महज सवाब के ख्याल से देती है। किसी भी तरह के बिच्छू ने काटा हो भोलानाथ का नाम लेकर हमारा यह पाउडर उस जगह दो बूँद पानी के डाल के करें हाथ से मल दीजिये। अगर पाँच मिनट के अन्दर ही दर्द रफू न हो जाय तो हमारी कम्पनी पर हर्जाने और धोखेबाजी का दावा कर दीजिये। बात ही बात नहीं यह मैं करके दिखा दूँगा। इतना कहके वह किसी नहीं नहीं कहते हुए नौजवान का हाथ पकड़कर उसे आगे खींच लेता है और उसके हाथ में उस बिच्छू से कटवा देता है और फौरन ही वह आदमी तड़पने लगता है। तब पूछता है भाइयो इसको अच्छा करूँ या नहीं और लोगों के हाँ कहने पर बार बार भोलानाथ का नाम लेकर वह उस दवा को उसी तरह मल देता है और दूसरे क्षण ही आदमी ठीक हो जाता है।

तब उस दवा की बहुत सी पुड़ियाँ लेकर वह कहता है—"भाइयो आपने बिच्छू की इस दवा का असर देखा। जिस जिस भाई को यह दवा मुफ्त चाहिए अपना हाथ फैलाये।" और फौरन बीसों हाथ फैल जाते हैं। चौबे बढ़कर सब लोगों के हाथ में उस दवा की पुड़िया देता हुआ कहता है—"आप लोग साँप की अक्सीर दवा मुफ्त लिये बिना न जायँ यह मेरी अर्ज है। अच्छा हाँ, भाइयो मैंने बिच्छू की यह दवा आपको दी, मान लीजिये एक एक पैसा मैं हर दवा देनेवाले भाई से दवा के लिए नहीं बल्कि इसलिए माँगूँ कि गरीबों की मदद की जाय तो आपके दिल में यह ख्याल तो पैदा न होगा कि चौबे ने हमको बेवकूफ बना के पैसा ठग लिया।" लोग फौरन नहीं नहीं कहते हैं, वह हाथ फैला के सबसे पैसा ले लेता है। और कहता है अगर ये पैसे वापस न दूँ तो? लोग कहते हैं कोई बात नहीं। वह कहता है—"ये आपने खुशी से दिये हैं। अब हाईकोर्ट में भी दावा करने पर वापस न मिलेंगे।" लोग—"कहते हैं न मिलें।'

पैसों को अपने हाथ में उछालते हुए वह कहता है—"लेकिन भाइयो ये तारीका ठीक नहीं, जिसको सबाब कमाना है अपना पैसा अपनी मर्जी के माफिक लगाये, मुझे इस तरह पैसा लेने का कोई हक नहीं है और पैसे वापिस करते हुए वह कहता है—"किसी लँगड़े, लूले मोहताज को दे दीजियेगा किसी मन्दिर या मसजिद में चढ़ा दीजियेगा। मुझे इसकी कोई दरकार नहीं। ये तो मैंने सिर्फ यह देखने के लिये माँगा था कि आप दवा की कितनी वकत करते हैं।

तब बड़े बड़े काले और जहरीले साँप जिन्हें देखते ही डर पैदा होता है निकालते हुए वह कहता है भाइयो ये साँप ऐसा धोखेबाज जानवर है जिसकी तबियत का कभी अन्त नहीं मिल सकता। शेर और चीते का विश्वास कर ले पर इसका विश्वास न करे। ये देखिये खाकसार की इस कोशिश में कि साँप की नस्ल और तबीयत का कुछ राज मिल जाय, जाने कब से पास रहने वाले और नये साँपों ने बखत बखत पर ऐसा काटा है कि सारे बदन भर में ज़हर फैला हुआ है। ये तो कहिये कि दवाइयों के जोर पर जिन्दा हूँ।" यह कहता हुआ वह अपने बदन के हिस्सों को खोलकर दिखाता है जहाँ साँप के काटने के दोहरे निशान बने हुए हैं। तब वह किसी साँप का सिर अपने हाथों में लेकर दबा देता है और उसके जोरों में फुफकारने पर छोड़ देता है और लोग साँप की तेजी से चलती जीभ और दाँत देखते हैं।

तब वह बहुत सी शीशियाँ निकाल कर कहता है यह साँप की दवा इतनी पुर असर है कि ज्यादा तो आपसे क्या कहूँ हाँ इतना असर जरूर रखती है कि अगर आप इस दवा की दस बूँदें घड़ा भर पानी घोलकर घर के चारों तरफ वह पानी डाल दें तो साँप क्या किसी भी रेंगने वाले जानवर की मजाल नहीं है कि उतने घेरे में सात साल के अन्दर कदम रख ले। सात साल के बाद आप फिर पानी में मिलाकर इस दवा को अपने घर के आसपास डाल दें, और साँप काटने पर इस दवा की दो बूँदें पाव भर पानी में मिलाकर पिला दीजिये और दो ही बूँद जखम पर डाल दीजिये। फिर देखिये उस आदमी को

आराम होता है या नही। कोई आदमी अगर तैयार हो जाता तो इस नाग से कटवा कर इस दवा की अजमाइश करवा देता, और कोई है इतना हिम्मतवर और बहादुर" कह कह कर वह कई आवाजें देता है पर कोई सामने नही आता। तब वह कहता है, "तब मजबूरी है।" अच्छा सॉप की ये दवा जिस भाई को मुफ्त चाहिये अपना हाथ फैलाये, बहुत से हाथ फैल जाते हैं। वह सबके हाथ मे दो दो शीशिया देकर कहता है ये दवा हमारे कारखाने से दो दो शीशी बाटने का हुक्म है। अच्छा भाइयो मान लीजिये मैं आपसे कहूँ कि आप इस दवा के लिये नही भोलानाथ के नाम पर गरीबो की मदद के लिये एक रुपया दे दीजिये तब आपको यह ख्याल तो न होगा कि चौबे ने हमसे रुपया ठग लिया है?" लोग पहले की तरह नही नही कहते है तब वह कहता है "अच्छा लाइये रुपया दीजिये।" कुछ लोग फौरन ही रुपया निकाल कर दे देते हैं और कुछ उनकी देखा देखी ये ख्याल करके कि चौबे रुपया वापस कर ही देगा उसे रुपया दे देते हैं।

तब चौबे कहता है—ये रुपये आपने मुझे अपनी खुशी से दिये हैं न? लोग कहते हैं "हॉ", वह कहता है—हाईकोर्ट में भी दावा करने पर वापिस न मिलेगे। लोग कहते हैं कोई बात नहीं। वह कहता है—तीन बार ये कहिये कि हमने खुशी से दिये। लोग समझते हैं यह बिच्छू की दवा वाले पैसे की तरह वापस कर ही देगा। तीन दफे कहते हैं—"हाँ हाँ खुशी से दिये।" चौबे कहता है—"अच्छा हिन्दू को राम राम, मुसलमान को सलाम"—और अपना डेरा डगर समेटने लगता है। अब लोगो की समझ में असली मामला आता है। जो अक्लमंद होते हैं चुपचाप वापस चले जाते हैं, जो इतने बुद्धिमान नहीं होते हैं समान समेटते हुए चौबे से कहते हैं हम तो समझे थे दवा मुफ्त मिलती है। नौकर आदमी हैं बाबू जी की तरकारी का रुपया है वापस कर दीजिये। अब चौबे आँख बदल देता है—"अबे जायेगा कि मार खायेगा, रुपया अपना नहीं था तो दवा क्यों ली?" जो कोई बिगड़ता है वहाँ खड़े हुए कुछ हृष्ट पुष्ट व डण्डे लिये हुए लोग उनका

ढकेल कर कहते हैं—"जाओ यहाँ से, नहीं बहुत मारे जाओगे, ये तो तबायत का सौदा है जब रुपया माँगा गया था तभी तुम्हें कह देना था।

चौबे सामान नौकर पर उठवा के किसी पास की गली में हो जाता है जहा पुलिस वाला आकर कहता है चौबे पाँच रुपये हमारे हुए, आज बहुत हाथ लगा है, जिसके बिच्छू कटवाया था वह कहता है—देख चौबे आज मैंने कैसा फैल मचाया। आज रुपया लिए बिना न मानूगा। दो चार लोग जो दवा लेने के बाद जल्दी से रुपया निकाल कर देने लगे थे और जो रुपया वापिस माँगने वालों से लड़ते झगड़ते थे चौबे से कहते हैं—इस वक्त अठन्नी अठन्नी दिलवाओ भाई सबेरे तुमने कुछ नहीं दिया और तब चौबे किसी को कुछ और किसी को कुछ देकर कहीं दूसरी बाजार में उसी तरह फैलाव फैलाता है।

* * *

छब्बीस सत्ताईस साल की उमर इसी तरह बात गई। बेईमानी से कहिये और ईमानदारी से कहिये तो चौबे अपनी रोजी इसी तरह कमाता है। दुनिया में आगे पीछे कोई नहीं, मर जाय तो लाश उठा कर फेंकने वाला तक कोई नहीं। सैकड़ों रुपया इसी तरह कमाता है पर पास कभी एक पाई नहीं रहती। खाने पीने की कोई ऐसी अच्छी से अच्छी चीज नहीं जो बाजार में मिलती हो और चौबे ने न खाई हो। पर चौबे इस बात को बिलकुल नहीं समझता कि दुनियाँ में किसी का कोई ऐसा भी होता है जो आग्रह करके कोई चीज खिलाता है, नहीं करने पर भी खाने के लिए मनाता है। होटल में जिस दिन चौबे दो ही रोटी खाता है, मालिक अपना फायदा समझ के पूरी खुराक के दाम लेते हुए मन ही मन मुस्कराता है।

अपने दिल की आग मिटाने के लिये चौबे न जाने कितने रुपये रोज खर्च कर डालता है। खूबसूरत से खूबसूरत वेश्या के पास जाता है और उसे मुँह माँगा रुपया देके कहता है—"मुझसे बनावटी बातें न करो। मुझसे वाकई में मुहब्बत करो और जब वह कटाक्ष व हाव भाव के साथ कहती है—तुम्हारे चाँद से मुखड़े की याद हमें

दिन रात में एक बार भी नहीं भूलती है। वह सामने लगे हुए आइने में अपना साँवला चेचकरू मुँह, और छोटी छोटी आँखें देख के बाहर चला आता है और उसके दिल की जलन कभी शान्त नहीं होती।

फतेहगंज में एक कोठरी चौबे ने ले रखी है। इसी में उसके साँप व बिच्छू की पिटारियाँ व थैले रहते हैं। छै सात साल हुए जबसे उसने यह पेशा अख्तयार किया है। वह दिन में दो बार मजदूर पर अपना दवा का बक्स व साँपों के पिटारे लदवा कर ले जाता है और वापिस लाता है तभी मुहल्ले के लोगों से और उससे देखा देखी होती है पर कोई उससे बोलने का साहस नहीं करता। बड़े बड़े बाँके भी साँपों का साथी समझके उससे बात नहीं करते। उसकी कोठरी के अन्दर जाने की तो बात दूर रही उस चबूतरे पर भी कभी कोई नहीं बैठता।

चौबे के इस तरह के रंगिस्तानी जीवन में भी एक ओसिस है। वह है सामने रहनेवाले कायस्थ बाबू का विधवा बहू की मुस्कराहट। चौबे के दरवाजा खोलने की आवाज जैसे ही खट से होती है वह अपनी खिड़की से झाँककर मुस्करा देती है। यह व्यापार आज कई सालों से चला आता है, चौबे दरवाजा खोलता है, वह मुस्करा देती है और कभी गली में सुनसान होने पर चौबे उसे इशारे से बुलाने लगता है तो वह भाग जाती है, पता नहीं लज्जा से, साँपों के डर से या किसी और वजह से।

चौबे को उसका सलोना श्यामल मुँह और उन्नत वक्षस्थल ऐसा अच्छा लगता है कि उसका वहीं मन होता है जो उन सफेद चमड़े वाली और पाउडर से पुती परियों को देखकर कभी नहीं होता, न हुआ है यानी उसे हृदय से लगाकर शान्ति अनुभव करने का।

जाने क्यों चौबे को इस बात का विश्वास हो गया है कि उसके हृदय की जलन को यह सलोनी रजन ही शान्त कर सकती है। वह उसे रोज देखता है, उसके बारे में सोचता है और उसे नहीं पाता इसीलिए।

चौबे चाहता है किसी दिन वह रजन को मौके से पा जाय और उसे हृदय से लगाकर उसे जता दे कि वह उसे कितना प्यार करता है, पर साल पर साल चले जाते हैं और कभी मौका ही नहीं लगता।

* * *

इधर तीन दिन से जाड़ा बेहद पड़ रहा है और उस पर भी बदली है, एक तो करेला और फिर नीम चढ़ा। चौबे की तबीयत भी दो तीन रोज से खराब है, जुकाम होगया है और थोड़ी बहुत हरारत भी रहती है, इसीलिए दो रोज से बाजार भी नहीं गया, कुछ कमाई धमाई भी नहीं हुई, यों ही पड़ा हुआ कोठरी में सोता रहता है।

रजन विधवा है न, इसीलिए रात ज्यादा हो जाने पर भी वह विधवा का काम कर रही थी यानी ननदों और छोटे देवरों के पैर दाबकर उन्हें कहानी सुनाकर सुला चुकने पर अब बर्त्तन माँज रही थी। बर्त्तन माँज चुकने पर सोचा कूड़ा बाहर फेक दें और डलिया में कूड़ा भरकर धीरे से दरवाजा खोलकर चबूतरे के सिरे पर कूड़ा फेंकने गई। चौबे की कोठरी की ओर देखकर ख्याल आया कि बहुत दिनों से उसे देखा ही नहीं है, एकदम उत्कंठा पैदा हुई क्या बात है, जरा देख लूँ, जाकर कोठरी का दरवाजा धीरे से ठेला, दरवाजा पास ही रखे हुए पिटारे से टकरागया और एक साँप उसमें से निकलकर उसके पैरों में लिपट गया और वह वहीं चीख मार कर गिर पड़ी। आवाज सुनकर चौबे ने उठकर दिया जलाया। देखा तो रजन के वक्षस्थल के पास से खून की धार बह रही है और कोठरी में एक ओर आज ही एक नट द्वारा लाया हुआ नाग कुण्डल मारे बैठा है।

अब चौबे के हाथों के तोते उड़ गये। उसने इस साँप की ज़हर की थैलियाँ अभी न निकाली थीं। अब उसने दौड़ कर अपनी उन दवाइयों को आजमाना शुरू किया जिनसे वह नित्य प्रति सैकड़ों के गले घोटता था, पर उनमें था ही क्या जो वह कारगर होतीं। अपनी कुछ सच्ची दवाइयाँ जो उसने वक्त बे वक्त के लिये रख छोड़ी थीं उनसे ही उसने रजन को ठीक करना चाहा, पर सब व्यर्थ।

अब उसे क्रोध आया, अपने ऊपर, अपने पेशे पर, अपनी नकली दवाइयों पर और इन साँपों पर । उजेला फैल गया था, लोग गली मे चलने लगे थे। चौबे ने बिच्छू की दवा का पुड़ियों का बोरा उठाया और बाहर फेंक दिया, साँप की दवा की भी यही हालत हुई । छन ! छन ! गली भर मे काँच ही काँच फैल गया । रास्ता चलते लोग खड़े होकर देखने लगे ।

अब साँपों की बारी आई । चौबे साप का फन पकड़कर मरोड़कर उसे गली मे फेंक देता । एक दो दस बीस पचास सौ गली मे मरे हुए साप ही साप इकट्ठा होगये । अब चौबे ने दौड़कर उस रजन को काटने वाले नाग का फन पकड़ लिया । पर उसने फुर्ती से पलट कर दो तीन जगह चौबे के हाथों में काट खाया । उसके हाथों से खून टपाटप गिरने लगा । पुलिस दरवाजे मे अन्दर घुसी । बेहोश होते हुये चौबे ने उस साँप की भी गर्दन मरोड़ कर सिपाहियों की ओर फेंकते हुये कहा—"रजन भी मेरे साथ है ।"—और वह चक्कर खाकर उसी जगह गिर पड़ा ।

नारी-हृदय

मिस्टर भूपेन्द्रसिह लखनऊ के पुराने निवासी थे । जीवन-वृत्ति प्रोफ़ेसरी थी और कुछ पैतृक सम्पत्ति भी थी । उनके पिता ने अपने जीवन का अधिकतर भाग उन्हे योग्य, सुशिक्षित और सच्चरित्र बनाने मे व्यतीत किया था और इसमे उन्हे आशातीत सफलता भी प्राप्त हुई थी । क्योंकि भूपेन्द्रसिह ने अपने पिता की इच्छा के अनुकूल ही, जो यह कहा करते थे कि संसार का सारा ज्ञान पुस्तकों में है पुस्तकों से प्रेम करना सीख लिया था और यह इसी का परिणाम था कि आसपास की दो-चार यूनिवर्सिटियों में भूपेन्द्रसिह सा फिलासफी का कोई अन्य ज्ञाता नहीं था । सीधे-सादे व सच्चरित्र ऐसे थे कि खद्दर के सिवाय और कोई

एक कपड़ा भी उनके बदन पर किसी ने कभी न देखा था। रास्ते में चलते तो ज़मीन का ओर देखते हुए, बला से कोई भी उनके पास से निकल जाय और जब चिल्लाकर लोग अभिवादन करते तो वे बिना सिर उठाए ही उसका जवाब दे देते। उनके लिये यदि संसार में कोई चीज बनी थी तो पुस्तक, कुछ काम बना था तो अध्ययन; दूसरी ओर उनका ध्यान ही न जाता। यही कारण था कि तेइस साल की अवस्था में उन्होंने एम० ए० की डिग्री ले ली थी और पचीस के होते-होते वे प्रोफेसर होगये थे।

साइकिल पर कालेज जाते तो उनके मित्र लोग कहते—'क्यों प्रोफेसरी की भद्द करवाते हो। यही खटारा घसीटते वर्षों हो गये। इतना रुपया जमा करके क्या करोगे? छाती पर रख के तो ले न जाओगे। एक कार क्यों नहीं खरीद लेते।' भूपेन्द्र जब से प्रोफेसर हो गये तो सम्बन्धियों की आवा-जाई बन्द ही न होती थी। कोई अपने को भूपेन्द्र-सिंह का फूफा बताता, कोई मौसिया। फिर यहां तक तो ग़नीमत थी, लेकिन ये सम्बन्धी एक बार आकर फिर महीनों जाने का नाम न लेते।

कुछ जाति-भाइयों ने आ आकर कुंडली की फर्मायश करना और घर की देहली बुरी तरह घिसना शुरू कर दिया। सबकी बातों को तो भूपेन्द्रसिंह टाल जाते या कह देते—'अच्छा देखा जायगा', परन्तु मिस्टर चौहान से वे भी डरते थे। चौहान प्रारम्भ से ही भूपेन्द्र के यहाँ आया-जाया करते थे और भूपेन्द्र के खास मित्रों में थे। वे अवस्था में चार-पाँच साल भूपेन्द्र से बड़े थे और लखनऊ यूनिवर्सिटी में ही केमिस्ट्री के प्रोफेसर थे। जिस समय भूपेन्द्र के माता-पिता जीवित थे तभी से मिस्टर चौहान घर में आया-जाया करते और पिताजी मिस्टर चौहान का काफी आदर-सत्कार किया करते, इसीलिये भूपेन्द्र को उनकी कोई बात टालने का साहस न होता था। वैसे तो भूपेन्द्र और चौहान में बिल्कुल सम भाव रहता, खूब बातचीत और हँसी-मज़ाक होता, लेकिन जब गम्भीर भाव से चौहान कोई बात कह देते तो भूपेन्द्र कभी तर्क न करते।

गर्मियों की छुट्टी का एक दिन था—

भूपेन्द्र और मिस्टर चौहान दोपहर के समय कमरे में बैठे हुए बातचीत कर रहे थे कि एक साहब ने कमरे में प्रवेश किया। दोनों ने खड़े होकर उनका स्वागत किया और आदर से बैठाला। शिष्टाचार के पश्चात् मिस्टर चौहान ने उन सज्जन के आने का कारण पूछा। बात-चीत होने पर मालूम हुआ कि उक्त सज्जन कानपुर के बैरिस्टर मिस्टर नरेशसिंह हैं। अपनी पुत्री (जिसने उसी साल बी० ए० पास किया था) के ब्याह का प्रस्ताव लेकर वे भूपेन्द्रसिंह के पास आये थे।

चौहान—'लड़की की अवस्था क्या है?'

बैरिस्टर सा०—'उन्नीस साल।'

'लड़की की प्रकृति कैसी है? शान्त या तीव्र।'

'शान्त प्रकृति की तो नहीं कही जा सकती, लेकिन वैसे झगड़ालू भी नहीं है। उसमें यह बात ज़रूर है कि जिस बात को ठीक समझ लेती है उसे सब प्रकार से करना चाहती है। वैसे मूर्ख नहीं है जो प्रत्येक बात पर अड़े।'

चौहान—'खैर, लड़की तो आप दिखला ही देंगे।'

बैरिस्टर सा०—'अवश्य। लड़की का चित्र मेरे पास अभी है, उससे यदि आपको सन्तोष हो जाय तो ठीक है, नहीं तो मैं उसके लिये भी तैयार हूँ।'

चौहान ने चित्र लेकर देखा और कहा—'मुझे आप पर पूर्ण विश्वास है। संसार में यदि लोग एक-दूसरे का विश्वास न करें तो कैसे काम चले।'

बैरिस्टर साहब ने शिष्टता से कहा—'मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ।'

मिस्टर चौहान—'अब हम लोगों को ब्याह करने में कोई उज्र नहीं है। आपको मुझसे कुछ पूछना है?'

पास बैठे हुए भूपेन्द्र ने चौहान का हाथ दबाया। चौहान ने जोर से कहा—'मैं जो कुछ करूँगा तुम्हारे अच्छे के लिए होगा।'

बैरिस्टर सा०—'मुझे कोई बात नहीं पूछना है। आपको कौन से दिन ठीक पड़ेंगे ?'

चौहान—'हमको कुछ तयारी थोड़े ही करना है, आप अपना सुभीता देख-भाल लीजिये।'

बैरिस्टर सा०—'आप ठीक कहते है। आखिरी जून में कोई तारीख तय करूँ ?'

चौहान प्रसन्नता से बोले—'हाँ, हाँ।'

बैरिस्टर साहब ने १००) का एक नोट चौहान के हाथ पर रख दिया और उठ खड़े हुए।

चौहान ने हँसते हुए कहा—'थैंक्स, यह मिठाई के लिये होंगे।'

बैरिस्टर साहब ने हँसकर हाथ मिलाया, और बिदा ली।

इसके दूसरे दिन ही, हजरतगंज जाकर मिस्टर चौहान ने सिंह को 'मास्टर ब्यूक' कार खरिदवा दी। इस तरह वह बातें जो भूपेन्द्रसिंह सालों से टालते आ रहे थे मिस्टर चौहान ने दो रोज में करवा डालीं।

चार छः रोज बाद ही कानपुर से तारीख पक्की होकर आ गई। मिस्टर चौहान ने ब्याह के लिये तैयारियाँ करना शुरू कर दीं। अधिक टीम-टाम के वे खिलाफ थे। ब्याह शादी में बहुत ज्यादा रुपया खर्च करना, बड़ी भारी बारात ले जाकर दूसरे के सिर पर बोझा डाल देना वे शान-शौकत की बात न समझते थे। इसीलिये पास की तारीख को उन्होने ठीक समझा और खास-खास सम्बन्धियो व मित्रों को निमंत्रित कर दिया।

ब्याह का दिन आया, बारात कानपुर पहुँची। प्रसन्नता व उल्लास के झोंको में भूपेन्द्र और मालती के हाथो में कंगन बँध गया। यह वह बन्धन है जो हिन्दू-धर्मानुसार आजन्म नहीं छूटता। मजबूती में लोहा, फ़ौलाद इत्यादि लौकिक वस्तुएँ उसकी बराबरी नहीं कर सकतीं। यह पुनीत बन्धन पाश्चात्य देशों के ब्याह की भाँति कोई कान्ट्रैक्ट (ठेका) नहीं है जो जब चाहे तब तोड़ा जा सके।

बारात कानपुर से लौट आई। भूपेन्द्र उसी झगड़े में फँस गये, जिसकी अनावश्यकता को सिद्ध करने के लिये घण्टों तर्क करते थे। यही कारण था कि लोग उनपर इतनी फब्तियाँ कसते और चुटकियाँ लेते थे। यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर कहते—'यह महाशय कहाँ तो ब्याह के नाम से चौंकते थे और कहाँ देर भी न लगी।' भूपेन्द्र को देखते ही लोग कहते—'तुम हम लोगों को इसी वास्ते उपदेश देते हुए अँधेरे में रखते थे कि ये लोग भी कहीं बारात में न आ पहुँचें।' भूपेन्द्र इस सबका उत्तर सिर्फ मुस्करा कर देते थे। जब मिस्टर चौहान उनसे मिलते तो वे हँसकर कहते—'आपने मुझे अच्छा फँसाया।'

* * *

मालती को प्यार के नाम से माला भी कहते थे। प्यार और लाड़ इन्हीं ने मालती को—सुन्दर, कोमल व मृदुल मालती को, कुछ-कुछ हठी व मानिनी बना दिया था। कारण यह था कि धनी-मानी व रईस, बैरिस्टर नरेशसिंह व उनकी पत्नी को, सन्तान की बहुत दिनों तक आशा लगाये रहने के बाद ही, मालती मिली थी और उसने एक को निःसन्तान और दूसरे को बन्ध्या के लांछन से बचा लिया था। उन दोनों ने अपना सारा लाड़-प्यार ममत्ववश उस पर न्योछावर कर दिया। प्यार कोई बुरी बात नहीं और सभी लोग जब-तब एक दूसरे को प्यार किया करते हैं, परन्तु अति सभी बातों की बुरी होती है। दूध लाभदायक होता है, परन्तु दस-पाँच सेर पी लिया जाय तो बुरी दशा हो जाती है। यही बात आवश्यकता से अधिक मालती के दुलार में घटित हुई।

लाड़-प्यार में मालती पलने लगी। बड़े आदमियों को यह ख्याल बधा रहता है कि जब बच्चों की इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती तो वे चिड़चिड़े हो जाते या बिगड़ जाते हैं। मालती भी इन्हीं भावनाओं में पाली जाने लगी। उसकी असम्भव से असम्भव प्रत्येक इच्छा की पूर्ति करने का पूरा प्रयत्न किया जाने लगा। चाहे कैसी ही बात मालती कहती उसी क्षण उसकी पूर्ति की जाती। परिणाम यह हुआ कि लोगों

की दृष्टि में मालती बिगड़ गई ; क्योंकि दूसरों पर तो वह शासन करती थी परन्तु स्वयं अपने से बड़ों की भी बात न सुन सकती थी।

यही सोच-विचारकर बैरिस्टर साहब ने उसे ऐसी जगह ब्याहा जहाँ न उसको बातें सुनाने या शासन करने को सास-ननँद थीं न उससे अड़ने को अन्य सम्बन्धी।

लखनऊ आकर मालती ने देखा यहाँ वह रंग न था। खाना बनाने को, अन्य काम-काज करने को नौकर-चाकर और दासियाँ थीं, परन्तु अपना कहा जानेवाला कोई ऐसा व्यक्ति, जिसकी बराबरी का वह दावा कर सके, लड़-झगड़ सके, रूठ सके, मना सके, था ही नहीं। नौकर-चाकर जो थे वे उसकी हाँ में हाँ मिलाकर बाद में हँसनेवाले थे। भूपेन्द्रसिंह को इन बातों के लिए कभी फ़ुर्सत ही न मिलती थी। वे अपनी छुट्टी या अवकाश के अधिकतर भाग में अपने स्टडी-रूम में बैठे पढ़ा-लिखा करते थे। वहाँ किसी को भी आने की इजाजत न थी। फिर स्टडी-रूम मर्दाने में था, मालती तो भला वहाँ जा ही कैसे सकती थी। भूपेन्द्रसिंह अन्दर या तो भोजन करने के समय आते या शयन करने; सो भी रोज़ नहीं, जिस दिन लिखते-पढ़ते अधिक रात बीत जाती तो बैठक ही में लेट रहते।

इतने पर भी मालती की प्रत्येक सुविधा का प्रबन्ध था। घर के अन्य खर्चों के अलावा मालती को दो सौ रुपये ऊपर के खर्च के मिलते ; दो दासियाँ सिर्फ मालती के निजी काम के लिये रखी गयी थीं। सुबह-शाम शोफ़र मोटर के लिये आकर पूछ जाता था, फिर भी मालती का मनोरंजन न होता था। ग्रामोफ़ोन या हारमोनियम से वह कहाँ तक सिर फोड़ती। यहाँ कोई ऐसा न था जिससे वह ज़रा देर बातचीत कर सके, ताश खेल सके या मन बहला सके। नौकरों या दासियों से तो वह बात-चीत करने में अपना अपमान समझती थी। आता-जाता कोई यहाँ था ही नहीं, शायद इसी लिये कि भूपेन्द्र भी कभी किसी के यहाँ न जाते थे। मालती को, जो अनेक सम्बन्धियों और कुटुम्बियों से भरे घर में रहती थी, जिसे दिन भर सखी-सहेलियों से छुट्टी ही न मिलती थी, यहाँ दिन भर बुत की तरह बैठे रहना अच्छा न लगता था।

उसकी दिन भर की दिनचर्या यही थी कि वह बैठी हुई राह देखा करती थी कि कब भूपेन्द्रसिंह भोजन करने आयें। दोपहर का अधिकांश व प्रातःकाल का लगभग सारा समय इसीमें कटता, यद्यपि ऐसे अवसरों पर भी अधिक बातचीत न होती। रोज की एक पेटेन्ट बात यह था कि कमरे में बैठी हुई मालती से फिलासफ़र भूपेन्द्र आकर कहते—'आओ भोजन करने चलो।' मालती पीछे-पीछे चल देती। खाने के समय भी कोई विशेष बातचीत न होती यदि कोई बात मालती पूछ ही बैठती तो भूपेन्द्र मानो एकदम नींद से जग पड़ते और बहुत संक्षेप में उसके प्रश्न का उत्तर दे देते। भोजन करके वे सीधे अपने पढ़ने के कमरे में चले जाते।

इस रूखे जीवन से मालती घबड़ा उठी। उसके हृदय में एक तरंग ने जोर मारा। और उसने मान करने की ठानी। सन्ध्या समय भूपेन्द्र ने आकर नित्य की भाँति उस दिन भी अपनी वही बात दुहरायी—'आओ भोजन करने चलो।'

आराम कुर्सी पर पड़े-ही-पड़े मालती ने बड़े विकृत स्वर में कहा—'मेरे सिर में दर्द है, मैं आज खाना न खाऊँगी।'

कालेज के सीधे-सादे प्रोफेसर को इस सीधी-सी बात में किसी प्रकार का रहस्य या गूढ़ार्थ न प्रतीत हुआ। वह साहित्यिक व कवियों का सा हृदय न रखते थे। वह यह बिलकुल ही न सोच सके कि सरल सुलभ रमणी की बात में भी कोई गूढ़ार्थ या रहस्य होता है। उन्होंने गंभीरता से कहा—'हाँ जब तबियत ठीक नहीं है तो न खाना ही ठीक होगा।' फिर दूसरी ओर मुड़कर आवाज दी—'हिरिया, बहू के सिर में मालिश कर दे।' काम करते, लिखते-पढ़ते भूपेन्द्र के सिर में भी अक्सर दर्द होने लगता था और वे इसे भी उसी प्रकार का दर्द समझकर भोजन करने चल दिये।

यह बात न थी कि मालती को भूख ही न लगी हो, उसके पेट में चूहे दौड़ रहे थे, उसने कहा यह सोचकर था कि कम-से-कम दो-तीन बार खाने के लिये कहेंगे ही, पर जब भूपेन्द्र ने उसकी बात पर पूर्ण

विश्वास करके, तबियत की ख़राबी समझ, उसे भूखे रहने का ही आदेश दिया, तो वह झुँझलाहट और क्रोध से पागल होगई। इस समय उसकी वह दशा होगई जो उस सैनिक की हो जाती है जिसका प्रतिद्वन्द्वी बड़ी आसानी से उसके अस्त्र-शस्त्र छीन दूसरे कार्यों में बेफ़िक्री से व्यस्त हो जाता है। इसलिये जब हिरिया तेल लेकर मालिश करने आई तो उसने तेल की प्याली छीनकर दूर फेंक दी और उसे कमरे के बाहर ढकेल दिया : फिर आप अपने पलंग पर पड़कर रोने लगी। नौकरानी बेचारी गिरते-गिरते बची तो अपनी तक़दीर को कोसती हुई कोठरी की ओर चल दी; क्योंकि आज्ञा मानने और सेवा करने के बदले उसे धक्के खाने पड़े थे।

फ़िलासफ़र साहब उस रोज़ किसी पुस्तक की समालोचना लिखने में ऐसे व्यस्त हुए कि उन्हें स्टडी रूम में ही दो बज गये। इतनी रात गये उन्होंने अन्दर जाने की आवश्यकता न समझी और वे बैठक में ही लेट रहे।

सबेरा होते ही भूपेन्द्र की अन्दर बुलाहट हुई। वहाँ पहुँचते ही मालती ने कहा—'मैं घर जाऊँगी।'

मालती के मुँह पर रात भर जागने और भूखे रहने के कारण जो शिथिलता आगई थी, उदासी छा गई थी, आँखों में सूजन और लाली आगई थी, इन सबको उसकी तबियत ख़राब होने का चिन्ह समझते हुए भूपेन्द्र ने मन में सोचा कि तबियत ख़राब होने के कारण मालती अपने माता-पिता के पास जाना चाहती है और इसलिये उन्होंने सरलता से कहा—'मैं अभी जाकर पत्र लिखे देता हूँ वे आकर तुम्हें लिवा ले जायँगे।' इतना कहकर वे सीधे बाहर चले गये।

दो रोज़ बाद बैरिस्टर साहब का पुराना व विश्वस्त नौकर आकर मालती को कानपुर लिवा ले गया।

* * *

टेनिस कोर्ट में क़दम रखते हुए इन्दु ने मालती से कहा—'माला, आज का 'लीडर' देखा तुमने ? तुम्हारे वो डाक्टर की डिग्री लेने कलकत्ता जा रहे हैं।'

मालती बिलकुल अप्रतिभ हो गई। जूते के फीते ठीक करने के बहाने उसने नीचे मुँहकर डबडबाई हुई आँखों को पोंछ डाला। फिर अपने आन्तरिक उद्वेग को दबाती हुई बोली—'मैं तो आज पेपर देख नहीं पाई। कहाँ जा रहे हैं—कलकत्ते ?'

इन्दु ने सरल भाव से पूछा—'तुम्हें उन्होंने इसके विषय में कुछ लिखा नहीं ?'

मालती ने बात बनाते हुए कहा—'एकदम से बात तय हो गई होगी, पत्र तो लिखते ही लिखते लिखा जायगा। पेपर में खबर आने में क्या देर लगती है।' यह कहती हुई मालती कोर्ट में उतर आई, वह इन्दु को अधिक बात-चीत करने का मौका न देना चाहती थी।

खेल शुरू हो गया। उस दिन मालती जैसा खेली वैसा शायद कभी न खेली थी। मुश्किल से दो-चार स्ट्रोक्स उसने अच्छे रिटर्न किये होंगे, नहीं तो ज्यादातर मिस ही हो गये। कानपुर की गत वर्ष की 'लेडी चैम्पियन' मालती को दुधमुँही बालिका इन्दु से, जिसने अभी चार दिन हुए टेनिस खेलना सीखा था, हारते देखकर अन्य सभी कोर्टों का खेल बन्द हो गया। मालती 'लव गेम' से हारी। सबको आश्चर्य था कि आज मालती को क्या हो गया। मालती को अन्यमनस्क देखकर इन्दु ने कहा—'अब खेलने का मन नहीं है क्या माला ?'

मालती ने कहा—'हाँ हटाओ।'

इतना कहकर मालती बिना किसी साथी की पर्वाह किये ही जमीन की तरफ देखती हुई चल दी।

मिसेज दास ने मुस्कराते हुये कहा—'आज रंग बदरंग है।'

मिस कपूर—'पाँच महीने इनको लखनऊ से आये हो गये तब से लौटकर नहीं गईं।'

मिसेज शर्मा—'मिस्टर सिंह भी तो कभी नहीं आते। कुछ मामला गड़बड़ मालूम होता है।'

मिसेज़ दास—'मिस्टर सिंह की तो आज लीडर में तस्वीर निकली है, फिलासफी में डाक्टरेट लेने कलकत्ते जा रहे हैं।'

इन्दु—'और अभी तक उन्होंने इसके बारे में इन्हें कुछ लिखा भी नहीं है।'

सब लोग बोल उठी—'तभी-तभी।' मिस कपूर बीच ही में बोल उठी—'आप लोग भी क्या बातें करती हैं। मिस्टर सिंह इतने दिनों के लिए कलकत्ते जायँगे तो इन्हें यहीं छोड़ जायँगे?'

इस पर सबने अपने-अपने विचार प्रगट किए—'ले जरूर जायँगे।' 'कौन जाने ले जायँगे कि नहीं।' 'शायद ले जायँ।'

इधर मालती सोचती चली जा रही थी—'मुझे वे खबर क्यों देने लगे। मैं उनकी कौन होती हूँ। आज पाँच महीने लखनऊ से आये हो गये उन्होंने खबर भी ली कि जीती हूँ या मर गई। वहीं रहती थी तो उन्हें कौन मेरी बड़ी चिन्ता रहती थी जो यहीं आने पर व्यग्र हो जायँ। ऐसे आदमी तो दुनिया में मैंने देखे ही नहीं, गोया संन्यास लिए हुए हैं—किसी से बोलने चालने से मतलब नहीं। किसी ने दो दफे एक बात पूछी तो उत्तर दे दिया—हाँ या हूँ। मैंने कहा—घर जाऊँगी। यह सोचकर कि यह कहेंगे—क्यों यहाँ तुम्हें क्या तकलीफ है, या—अभी से चली जाओगी; थोड़े दिन और रहो फिर चली जाना। इसके विपरीत उन्होंने कहा—अच्छा मैं अभी जाकर पत्र लिखे देता हूँ।'

थोड़ी देर में उसके विचारों ने पलटा खाया—'लेकिन उसमें उनकी क्या गलती है, मैं चली तो अपने मन ही से आई हूँ, उन्होंने तो भेज नहीं दिया। सम्भव है उन्होंने यह समझा हो कि मेरी वहाँ रहने की इच्छा नहीं है और यही सोचकर उन्होंने मेरे आने का प्रबन्ध कर दिया हो। फिर यहाँ आकर मुझे यह भी तो उचित था कि अपनी पहुँच का एक पत्र उन्हें डाल देती, इस पर उन्होंने अगर चुप साधी तो क्या बुरा किया। मैं जैसे अपने मन से चली आई हूँ वैसे ही मुझे अपने मन से चले जाना चाहिए।'

इन्हीं विचारों में डूबती-उतराती हुई मालती फाटक में घुसी। रैकेट वाला हाथ जरूरत से ज्यादा हिल रहा था और मालती जमीन की ओर देखती चली जा रही थी। चली क्या जा थी रही उसके पैर उसे लिये जा रहे थे अन्यथा वह अपने विचारों में इतना तन्मय थी कि उसे यह भी न मालूम हुआ कि वह कहाँ जा रही है, कितना चल चुकी है और कितना चलना बाकी है ?

बाग में रोज की तरह आज भी घास पर आरामकुर्सियाँ पड़ी हुई थी और गप-शप छिड़ी हुई थी। वहाँ आज प्रसन्नता का साम्राज्य था और मालती के पिता हँस-हँसकर किसी गौर वर्ण अचकन-धारी से बातचीत कर रहे थे। मालती ने जरा गौर से देखा, दिल में धुक-धुक होने लगी। हैं ! यह तो वही हैं। इतने में बैरिस्टर साहब पुकार बैठे—'माला, इधर आओ, भूपेन्द्र बाबू आये हैं।' मालती के हृदय की धड़कन बन्द हो गई, उसके मन पर उत्सुकता ने आकर डेरा डाल दिया, ठीक वैसे ही जैसे किसी विद्यार्थी के हृदय में परीक्षा-फल सुनने के पहले बेचैनी रहती है, जो उत्तीर्ण हो जाने की खबर पाते ही दूर हो जाती है।

मालती अपने आप ही कुर्सियों के पास तक चली गई, उसके हाथों ने मस्तक से छूकर नमस्कार का नाट्य किया, पर मालती न जानती थी कि वह क्या कर रही है। मालती वहाँ खोई हुई-सी खड़ी थी कि बैरिस्टर साहब ने कहा—'जाइए भूपेन्द्र बाबू आप भी कपड़े उतारिये।' मालती को अपनी दशा का ज्ञान हो आया और वह धीरे-धीरे अन्दर चल दी।

भूपेन्द्र ने बैरिस्टर साहब की बात का उत्तर दिया—'जल्दी क्या है उतार लूँगा।' फिर बातचीत छिड़ गई।

मालती चली आई। कमरे में भूपेन्द्र बाबू का अटैची केस रखा हुआ था, समय व्यतीत करने के लिये वह अटैची की चीजों की देख-भाल करने लगी।

थोड़ी देर में भूपेन्द्र बाबू ने कमरे में प्रवेश किया। मालती की

आँखों से झरझर आँसू गिरने लगे। भूपेन्द्र यह देखकर कुछ घबड़ा-से गये। उन्होंने कहा—'यह क्या, रोती क्यों हो?'

मालती—'आप मुझसे नाराज हैं।'

भूपेन्द्र—'यह किस बात से मालूम हुआ।'

मालती के हृदय पर से एक बोझा हट गया, अब शिकायत और उलाहने की न गुञ्जायश ही थी और न आवश्यकता ही। उसने मन हलका करने की चेष्टा में उत्सुकता से कहा—'तो मुझे कलकत्ते ले चलियेगा?'

भूपेन्द्र हँस कर बोले—'भाई वाह! और यहाँ आया किस लिये हूँ।'—

* * *

भूपेन्द्रसिंह ने कलकत्ते पहुँचते ही अपना मन पूर्णतया विद्याभ्यास में लगा दिया और फिर वे सदा की भाँति कार्य में मग्न एवं गभीर दिखलाई पड़ने लगे। उनका समय (चौबीसों घण्टे) अपनी थीसिस की ही तैयारी करने में बीतता। बातचीत अथवा किसी अन्य प्रकार के मनोरंजन की आवश्यकता का वे अनुभव ही नहीं करते। भोजन करने, नहाने, थोड़ी देर के लिये सो जाने इत्यादि नित्य-कर्मों के सिवाय अगर उन्हें कोई और काम था तो पढ़ना और लिखना।

शिवपुर के बाग के पास ही उन्होंने एक बँगला किराए पर लिया। काफी बड़ा और हवादार था, परन्तु अपनी पढ़ाई के कारण वे अपने स्टडी-रूम से ही न निकल पाते, चुपचाप कमरे में बैठे कभी इस किताब से कुछ पढ़कर नोट करते कभी उस किताब के पन्ने पलटते या घंटों लगातार लिखते ही चले जाते।

उनके कमरे से यदि कभी बातचीत का शब्द सुनाई देता था तो तभी जब मिस्टर नलिनीरंजन भट्टाचार्य आते। भट्टाचार्यजी कलकत्ता विश्वविद्यालय के फिलासफी के प्रोफेसर थे और अपने विषय के अनुपम ज्ञाता। भूपेन्द्र का विषय-ज्ञान, उनकी कुशाग्र बुद्धि, एवं उनका कठिन परिश्रम देख उन्हें उनपर बड़ा स्नेह हो गया था और वे बिना

किसी बात का विचार किए हुए भूपेन्द्र की कठिनाइयों को दूर करते थे।

भट्टाचार्यजी समुन्नत विचारों के पुरुष थे। वे स्वदेश और समाज के सच्चे सेवक, खद्दर-प्रेमी और सादा जीवन व्यतीत करने वाले थे। ऐसी महान् और उन्नत आत्मा के संसर्ग में रहकर भूपेन्द्र ने अपने जीवन को और भी कसौटी पर कसना प्रारम्भ किया। सादगी उन्हें पहले ही से प्रिय थी—भट्टाचार्यजी के संसर्ग से वह और भी बढ़ गयी। गाढ़े और मोल के कपड़ों का स्थान खद्दर के कपड़ों ने ले लिया और कार पर चढ़ने के बदले वे पैदल चलने का अभ्यास करने लगे।

कानपुर में एक-दो रोज़ में मालती ने भूपेन्द्र में जो बात देखी थी अर्थात् उनका सबसे मिलना-जुलना, हँसना, बातचीत करना, तो उसे बड़ी ही आशा बँधी थी क्योंकि वह भूपेन्द्र को इसी तरह का देखना चाहती थी, परन्तु कलकत्ते आते ही उसकी आशाओं पर पानी फिर गया। यहाँ आते ही भूपेन्द्र किताबों में फिर दिन भर जुटे रहने लगे।

कलकत्ता, मालती को एक कौतूहल और आमोद-प्रमोद की जगह प्रतीत हुई। लखनऊ में जब शोफ़र कार के लिए पूछने आता तो वह उदास मुँह से कह देती—'मैं कहीं न जाऊँगी।'—कलकत्ते के स्वतंत्र व फ़ैशनेबुल वातावरण ने उसके ऊपर भी अपना उड़ता हुआ प्रभाव डाला। धीरे-धीरे उसका संकोच हटा, वह अपनी कार पर घूमने निकल जाती। सौन्दर्य उसका अद्वितीय था ही, चम्पे की कली की तरह रंग, सुगठित देह व प्रभाव-शाली मुँह, देखने वाले को अत्यन्त शीघ्र आकर्षित कर लेता। खर्चा उसे काफ़ी मिलता था। उसके ठाठ-बाट, खुला हुआ खर्च और रूप-रंग ने कलकत्ते के सभ्य महिला-समाज को अपने ओर आकर्षित कर लिया।

धीरे-धीरे परिचय भी बढ़ा और सम्मान भी, अब कोई ऐसी पार्टी या जल्सा न होता जिसमें मिसेज़ सिंह न होतीं। टेनिस के खेल में, जो आधुनिक सभ्य व शिक्षित महिलाओं का एक आवश्यक आभूषण है, वह पहले ही से पारंगत थी। यहाँ आने पर वह गुण और भी चमका,

यहाँ तक कि लेडीज़ इविन क्लब की वह थोड़े ही दिनों में मुख्य सदस्य हो गई—उसके खेल की सारे शहर में धूम मच गई। आए दिन मेले होने लगे। बड़े-बड़े धनी-मानी घरों की स्त्रियों और धीरे-धीरे पुरुषों से उसकी जान-पहचान होने लगी। मालती को जब-तब पार्टी भी दी जातीं। उसने कई मेडल और कप जीते, शहर भर में लोग उसके खेल की प्रशंसा के पुल बाँधा करते और उससे मित्रता करना बड़े सौभाग्य की बात समझते।

यदि मालती को किसी बात का दुःख था और उसके मित्र-समाज के प्रत्येक सदस्य को यदि किसी बात का कौतूहल था तो इसी बात का कि मिस्टर सिंह इन बातों में ज़रा भी भाग न लेते थे। पहले थोड़े दिन तो जब लोग पूछते तो मालती इधर-उधर करके टाल देती—'उनकी तबियत ठीक नहीं है।' या—'आज उन्हें कुछ आवश्यक कार्य है। परन्तु इधर कुछ दिनों से यह समस्या मालती के लिये बड़ी हृदय-बेधक हो रही थी; क्योंकि उसने अपने क्लब में कभी-कभी यह भी देखा था कि कुछ लोग बातचीत करते-करते मालती के आने पर चुप हो जाते या इधर-उधर की बातचीत करने लग जाते। कोई कहता—'हाँ तो वह फाक्स टेरियर तुमने कितने का लिया था?'

मालती जानती थी कि उनके वार्तालाप का क्या विषय है और यह विषय ही उसके आमोद-प्रमोद में विघ्न डालने लगा था। कुछ लोग ऐसे भी थे जो उससे खुल्लम-खुल्ला कहते—'मिसेज़ सिंह! देखिये आप बड़ा गड़बड़ करती हैं, कल अपने क्लब की एनिवर्सरी है, डरहम कप का चैम्पियन प्राइज़ भी आपको मिलेगा। हम लोग उसके बाद ही यहाँ पार्टी करना चाहते हैं, आप कल मिस्टर सिंह को ज़रूर-ज़रूर लाइयेगा।'

मालती झुँझला भी उठती और उसके मन में आता कि वह सबको फटकार दे। परन्तु वह क्रोध को पी जाती, कभी-कभी अपनी स्थिति पर उसे लज्जा भी आती। वह मन में सोचती—'आह! मैं कैसी भाग्यहीन हूँ।'

डाक्टर साने की लड़की, जो मालती की बड़ी प्यारी सखी थी, बोल उठी—'और नहीं तो क्या, कल प्रोफ़ेसर साहब को ज़रूर लाना, नहीं तो तुम भी न आना।'

फाइनेन्स के सेक्रेट्री मिस्टर शर्मा ने कहा—'मेरी समझ में नहीं आता कि मिसेज़ सिंह तो इतनी सोशल हैं फिर मिस्टर सिंह को हम लोगों से इतनी घृणा क्यों है, जो वे एक बार भी यहाँ आना पसन्द नहीं करते।'

शान्ती मित्रा ने ज़रा बल खाते हुए कहा—'कुछ हम लोगों से घबड़ाते होंगे।'

सुधा बैनरजी बोली—'अजी नहीं, इसी डर से न लाती होंगी कि प्रोफ़ेसर साहब सीधे-सादे आदमी ठहरे कहीं आप लोगों के चक्कर में आ जायँ तो यह बेचारी हाथ ही मलती रह जायँ।'

सुधा ने यह बात ऐसे ढग से कही कि सब लोग बड़ी ज़ोर से हँस पड़ीं। मालती गंभीर दृष्टि से उनकी ओर देख रही थी। सुधा ने हँसते हुए मालती के दोनों कन्धे हिलाते हुए कहा—'अच्छा कल मिस्टर सिंह को लाओगी ना?'

मालती ने गंभीरता से कहा—'बात यह है कि मिस्टर सिंह अपनी स्टडीज़ में इतना व्यस्त रहते हैं कि उन्हें और किसी काम के लिए छुट्टी ही नहीं मिलती, नहीं तो आने को क्या हुआ।' फिर उसने अपनी झेंप मिटाने के लिये सुधा की ओर देखते हुए कहा—'आज मैं जाकर कहूँगी कि सुधा बैनर्जी ने आपको बुलाया है, सुधा-पान का ऐसा मौक़ा हाथ से क्यों जाने देते हैं। इसपर शायद वे दौड़ते हुए चले आवेंगे।'

सुधा इस बात पर लजा गई, उसके गुलाबी चेहरे पर लाली दौड़ गई। सब लोग मालती की चुटकी पर हँसते हुए उससे मिस्टर सिंह को लाने का बारबार आग्रह करके बिदा हुए।

* * *

सबेरे से मालती यही बात सोच रही थी कि भूपेन्द्र से क्लब चलने को किस तरह कहे। मालती ने आज तक कभी भूपेन्द्र से न तो अपने

साथ चलने के लिये कहा था, न घूमने के लिये ही, न किसी काम ही के लिये, और इसलिये उनसे कहने का उसे साहस न होता। कभी सोचती—'आजतक कभी उनसे कोई बात नहीं कही, इतनी-सी बात के लिए कहूँगी तो वे इनकार तो न करेंगे।' फिर सोचती—'पर जो कहीं इनकार कर दिया तो बड़ी किरकिरी होगी, मैं क्लब कैसे जाऊँगी।'

इन्हीं विचारों में गोते खाती हुई, साढ़े चार बजे के समय सुन्दर वस्त्रों से सजी हुई, हाथ में रैकेट ले मालती भूपेन्द्र बाबू के स्टडी-रूम के सामने आ खड़ी हुई। अन्दर बैठे हुए मिस्टर सिंह किसी प्रश्न से उलझ रहे थे और बाहर मालती उलझन में पड़ी हुई थी। यह उसके लिए पहला अवसर था जब वह स्टडी-रूम तक आई थी। इसीलिये उसे अन्दर जाने का साहस न होता था। मन में सोचती—'कौन कहे इनसे, चलो भी, कह दूँगी नहीं आये, उन्हें बड़ा ज़रूरी काम था।' फिर जो क्लब वालों की फब्तियों और आग्रह का ख्याल आता तो सोचती—'एक बार चल कर कहने में हर्ज ही क्या है, ज्यादा-से-ज्यादा न जायँगे।'

इसी सोच-विचार में मालती ने कमरे के सामने ६ मिनट बिता दिए, टाइम ४ बज कर छत्तीस हो गया, उसे पाँच बजे क्लब पहुचना था, एकदम हिम्मत करके कमरे में घुस गई। भूपेन्द्र दरवाज़े की तरफ़ पीठ किये हुए बैठे थे और खिड़की से सामने के बादलों के एक टुकड़े पर, जिन्होंने इन तीन चार मिनटों में स्थान और शक्ल बहुत काफ़ी बदल दी थी, दृष्टि जमाये हुए थे। मालती के आने का उन्हें पता भी न चला। इतने तन्मय बैठे हुए मनुष्य का, जो अपने छोटे से कमरे में बैठा हुआ दुनिया को भूला हुआ था, ध्यान भंग करने का मालती को साहस न हुआ। उसकी रिस्ट वाच की सुई ने सरक कर बताया—चार बजकर चालीस। अनजान में ही उसके हाथ का रैकेट कुर्सी से लड़ गया, शान्त कमरे में एक खटाके की आवाज़ हुई। भूपेन्द्र ने अपनी गर्दन एकदम घुमा दी। 'कहिये कैसे आना हुआ?'

मालती की रही-सही आशा भी भूपेन्द्र के प्रश्न पर जाती रही, किस

तरह पूछते हैं गोया मैं कोई बाहर से आई हूँ, या अनजान हूँ या अगर जान-पहचान भी है तो बड़े दूर की, फिर भी उसने सकुचाते हुए कह ही डाला—'हमारे क्लब की आज एनिवर्सरी है—मुझे डरहम क्लब का चैम्पियन प्राइज़ भी मिलने वाला है, इसलिए क्लब के सब लोगों ने आप के क्लब आने का बहुत-बहुत आग्रह किया था।'

बोलते वक्त मालती भूपेन्द्र के मुँह पर यह देखने के लिए दृष्टि जमाये हुए थी कि उसकी बात का उनपर क्या असर पड़ता है। परन्तु भूपेन्द्र के मुँह पर कोई विशेष भाव-परिवर्तन न हुआ। उन्होंने कोमल स्वर से कहा—'आज तो मुझे टाइम ही नहीं है, भट्टाचार्यजी से मुझे एक आवश्यक विषय में सलाह लेने जाना है। वैसे भी क्लब-सोसाइटियों में जाना मुझे अच्छा नहीं लगता, वहाँ का हा-हा, हू हू देखकर मेरी तबियत घबड़ाने लगती है—फिर भी सब लोगों के आग्रह की पूर्ति के लिए अगर टाइम होता तो मैं चला ज़रूर चलता, पर आज तो मजबूरी है।'

मालती अधिक न सुन सकी, वह कमरे से बाहर गई, अपने कमरे में आकर उसने रैकेट इतनी ज़ोर से फेंका कि खिड़की का काँच चूर-चूर हो गया, वह पलग पर पड़कर सिसकने लगी।

* * *

भूपेन्द्रसिंह और मालती लखनऊ लौट आये, लेकिन स्वभाव में बहुत-कुछ परिवर्तन लेकर। कलकत्ते का स्वतन्त्र वातावरण, वहाँ का स्वदेशी प्रेम और विशेषकर नलिनारंजन भट्टाचार्य का उच्च आदर्श, उनका उन्नत चरित्र व चाल-ढाल भूपेन्द्र को उसी रंग में रंग देने को पर्याप्त थे। भूपेन्द्र वैसे तो पहले ही से इन्हीं विचारों के पोषक थे, कलकत्ते जाकर उनके विचार पूर्णतया परिपक्व हो गये। अब वे अपने आपको इस योग्य समझने लगे थे कि अपने विचारों से दूसरों को क़ायल करके उन्हें भी अपने-ऐसा बनावें। बड़े ही विद्वत्ता और तर्कपूर्ण लेख वे पत्रों में लिखते, जिनकी गहराई पर लोग दाँतों-तले उँगली दबाते। अपनी गंभीरता छोड़कर, वे अब ऐसे लोगों से जो उनके विचारों से

सहमत न होते थे, तर्क करते, परन्तु उन्होंने अपनी अनुपस्थिति में लोगों को यह कहते हुए सुना कि—'मि० सिंह अपनी ओर तो देखते नहीं और दुनिया को उपदेश देते फिरते हैं एवं अपनी स्त्री पर, जो न जाने कितना रुपया एक महीने में विलायत भेज देती है, ध्यान देते नहीं, औरों पर टीका-टिप्पणी करते हैं।' इस जगह पर भूपेन्द्र को भी अपनी कमजोरी दिखलाई देती थी, उन्हें मालती से इस विषय में कुछ कहने का साहस ही न होता था।

कलकत्ते में बिना रोक-टोक घूमकर वहाँ की बिगड़े दिल व फ़ैशने-बुल स्त्रियों का साथ कर, उनके चमकीले आकर्षक विदेशी वस्त्रों को देखकर, मालती भी उस रँग में खूब रँग गई थी। उसने वहाँ ऐसे लोगों का साथ किया था जिनको राजनीति में हाथ-पाँव अड़ाना कुछ ठीक न जँचता था। जिन्हें अपनी नौकरी, फैशन, कपड़े, कघी, तेल, वैसलीन, हैज़लीन, स्नो-पाउडर से ही फ़ुर्सत न थी। जिन्हें शान शौकत, चमक-दमक से ही मतलब था, चाहे वह मैनचेस्टर के कपड़ों में हो, चाहे जापानी में। यह नहीं कि ये लोग बड़े राज्यभक्त थे अथवा स्वदेश के शत्रु थे वरन ये इस ओर से उदासीन थे। ये लोग राजनीति में भाग लेकर अपने जीवन को कंटकमय एवं अपने आमोद-प्रमोद में कमी कर उसे नीरस बनाना चाहते ही न थे।

मालती पर इस सगति का पूरा असर पड़ा था। वह सदा अपनी वेष-भूषा और अपने शृंगार की धुन में रहती और इतना ही नहीं उसकी यह प्रबल आकांक्षा थी कि जैसे सब पति-पत्नी एक साथ, एक विचार और एक तरह की पोशाक में रहते हैं वैसे ही वह और भूपेन्द्र भी रहें, परन्तु उनकी भिन्न प्रकृति देखकर वह मन-ही-मन झुँझलाती और जब-तब इस बात का मन में सकल्प करती कि वह भूपेन्द्र को अपने ऐसा बनाकर ही छोड़ेगी।

भूपेन्द्र इधर मन-ही-मन मालती के विचारों में परिवर्तन करने का साधन खोज रहे थे। यद्यपि भारत में प्रचलित तर्ज़-तरीक़ों के हिसाब से वह मालती को अपने मार्ग पर चलाने का अधिकार रखते

थे, परन्तु गृह-कलह का ध्यान करके वे इस मामले की कोई चर्चा न चलाते।

मालती इतने संयत व गंभीर विचार की न थी कि वह इन बातों पर ध्यान देती। वह फ़ैशनेबुल स्त्री थी और फ़ैशनेबुल पति की पत्नी बनने को उत्सुक थी तथा इसके लिए वह बड़े-से-बड़ा उत्सर्ग करने को तय्यार थी। यहाँ तक कि उसे इस बात की भी पर्वाह न थी कि इससे गृह-कलह की नींव पड़ सकती है। वह अपने विचारों के प्रवाह में वेग से बही जा रही थी और उसके वेग को रोकने में वह रुकावटें पर्याप्त न थीं। नितांत वही हुआ जिसकी आशंका थी अर्थात् कलह। भूपेन्द्र भी इस मामले में यहीं तक झुकने को तय्यार थे कि वे दोनों अपने-अपने मार्गों पर चुपचाप चले जायँ।

मालती ने अपने विचारों को कार्य-रूप में परिणत करने की चेष्टा आरंभ कर दी और चेष्टा ही नहीं अनधिकार चेष्टा भी। कहाँ तो वह भूपेन्द्र से इतना डरती थी, इतना अदब करती थी, कहाँ वह उनके कामों में दस्तन्दाज़ी करने लगी। पहले तो एक आध बार मालती के इन कार्यों पर भूपेन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ, परन्तु जब उन्होंने देखा कि अब अक्सर ऐसी बातें होने लगी हैं तो उन्हें क्रोध आने लगा। कम-से-कम वे अपने अधिकार तो न छोड़ना चाहते थे।

दो बार मालती ने भूपेन्द्र के खद्दर के मोटे कुर्ते इधर-उधर कर दिए। पहली बार तो भूपेन्द्र ने टाल दिया परन्तु दूसरी बार उनसे सहन न हुआ। तैश में वे मालती के पास पहुँचकर बोले—'मेरा नया वाला कुर्ता कहाँ है?'

मालती ने भूपेन्द्र की ओर दृष्टिपात किए बिना ही कहा—'मैंने एक फ़कीर को दे दिया।'

'क्यों?'

'वह बड़े रद्दी कपड़े का बना था, इसीलिये दे डाला, कोई अच्छे कपड़े का शर्ट बनवा लो।' मालती ने लापरवाही से कहा।

मालती के यह शब्द खद्दर-प्रेमी भूपेन्द्र के हृदय पर करारा आघात

लगाने व उसके हृदय की भावनाओं को जागृत करने के लिए पर्याप्त थे। वे जोर से बोले—'यह गरीबों के खून में रँगे हुए बढ़िया कपड़े तुम्हें ही मुबारक रहे, मैं उन्हें पहनना तो क्या, छूने के क़ाबिल भी नहीं समझता हूँ। लेकिन एक बात तुम्हें बतलाये देता हूँ कि आँखों पर पर्दा पड़े रहने के कारण जिस वस्तु के महत्व को तुम जान नहीं सकती उसकी शान के खिलाफ़ एक शब्द भी कहने की तुम अधिकारिणी कैसे हो सकती हो? मेरे लिये तो यह मोटा खद्दर ही सब कुछ है। यदि मेरे वस्त्रों को इसी प्रकार मोटा और भद्दा समझकर तुम बॉट दिया करोगी तो तुम्हारे हक़ में ठीक न होगा।'

इतना बड़ा व्याख्यान देकर कालेज के विद्यार्थियों को क़ायल बना देनेवाले प्रोफेसर साहब अपने कमरे में चले आये।

मालती रुआंसी हो आई, उसे अपने जीवन में कड़े शब्दों के सुनने का शायद यह पहला ही अवसर था। वह मन में सोचती थी—'ऐसी कौन बड़ी भारी बात थी जो इन्होंने मुझे ऐसी फटकार सुना दी। क्या इनका एक कुर्त्ते के लिए मेरी इतनी लानत-मलामत करना ठीक था।'

रविवार की दोपहर थी. भूपेन्द्र बाबू अपने कमरे में बैठे हुए थे, इसी समय उनके पुराने धोबी रम्मू ने बाहर से आवाज दी—'छोटे बबुआ चलो कपड़ा ले आओ चल के।' दरवाजे पर खड़े हुए रम्मू पर भूपेन्द्र ने दृष्टि डाली तो उन्हें नया ही रंग नजर आया। वह आज पहले की भाँति मखमली किनारे की धोती और ट्वील के शलूके में नहीं बल्कि ऊपर से नीचे तक खद्दर में था। उन्होंने मुस्कराकर कहा—'चलो।'

धोबी ने अपनी गठरी खोलकर कपड़े दे दिये और मैले कपड़े माँगे। भूपेन्द्र ने अपने चार खद्दर के कुर्ते, दो धोती और दो बनियाइन धुलने को दी। अभी धोबी कपड़े सम्हाल ही रहा था कि मालती ने अपने दो ब्लाउज, चार जम्पर और दो शेमीज लेकर धोबी के पैरों के पास ला फेंकी।

उन कपड़ों के पैरों के पास गिरते ही वह धोती ऐसा बिचका गोया

पैरों पर आग गिर गयी हो। वह दूर पर खड़ा होकर बोला—'मालकिन ई कपड़ा हम नहीं धोय सकित है।'

मालती ने आँखे तरेर कर कहा—'क्यों ?'

रम्मू ने अबकी बार ज़रा शान से कहा—'सब धोबिन सभा किहिन है कि गाँधी बाबा केर हुकुम माना जाय और विलायती कपड़ा न धोए जायँ। जौन धोबी विलायती कपड़ा धोई उहकर हुक्का पानी बन्द हुइ जाई। जात बाहर निकार दीन जाई। मालकिन हम ई कपड़ा कैसे धोय सकित है। हमरे तो चार बच्चा हैं अभई सबकेर बियाह-काज बाकी पड़ा है।

धोबी का एक साँस में इतना बड़ा लेक्चर सुन मालती आग-बबूला हो गई। वह क्रोध में बोली—'अच्छा तो जा यहाँ से एक कपड़ा भी न मिलेगा। बदतमीज मुझे तेरे-जैसे नालायक़ों की ज़रूरत नहीं है।'

रम्मू को आज तक इस बुरी तरह कभी भूपेन्द्र बाबू ने भी न डाँटा था। वह कपड़े खसकाकर बोला—'तो आप इतना गर्म क्यों होती हैं ? गानी रूटेंगी रनवास लेंगी। कपड़े नहीं दीजियेगा न दीजिये। आपके लिए जात-पाँत थोड़े ही छोड़ देंगे।' यह कहकर रम्मू जाने लगा।

मालती के क्रोध में रम्मू के शब्दों ने घी का काम किया, वह जोर से चिल्लाकर बोली—'निकल जा यहाँ से, तेरे ऐसे तीन-सौ साठ आवेंगे।'

रम्मू चौखट के बाहर पैर रखने ही वाला था कि भूपेन्द्रसिंह ने, जो अब तक खड़े यह सब दृश्य देख रहे थे और सोच रहे थे कि एक निरपराध आदमी की रोज़ी छीनकर मालती उस ग़रीब आदमी पर कितना अत्याचार कर रही है : पुकार कर दृढ़ स्वर में कहा—'रम्मू तुम्हें कपड़े दिये जाँयगे, विलायती कपड़े धोने को मैं तुम्हें बाध्य नहीं कर सकता, यदि पूछो तो तुम्हारी जाति के इस संगठन पर मुझे प्रसन्नता ही है। मेरे कपड़े सब खद्दर के हैं, उन्हें ले जाने में तुम्हें कोई उज्र न होना चाहिये।' यह कहकर उन्होंने अपने कपड़े उठाकर रम्मू की ओर बढ़ा

दिये। रम्मू चकित होकर भूपेन्द्र का मुँह देखने लगा। वह मन में सोचता था कि—'छोटे बबुआ आदमी आँय कि देउता।'

रम्मू गठरी के कपड़े गिन ही रहा था कि मालती उबल पड़ी—'मेरी इतनी बेइज़्ज़ती! आप इस अदना धोबी के सामने मुझे इस तरह बेइज़्ज़त कर रहे हैं। क्या मुझे गुस्ताख और मुँह जोर आदमियों को इतना कहने तक का हक़ नहीं है?'

'नालायक़ और गुस्ताख आदमियों को तुम हमेशा निकाल सकती हो, परन्तु निरपराध आदमियों की रोज़ी छीनने का हक़ मैं तुम्हें कभी न दूँगा।'

मालती के क्रोध की उस समय सीमा न था, यह ज़ोर से बोली—'यह धोबी सरासर गुस्ताख और नालायक़ है।'

भूपेन्द्र ने क्रोध के चिह्न न दिखाते हुए भी उतनी ही ज़ोर से कहा—'बिल्कुल नहीं, यदि अपने देश की सेवा करना, अपने भले जाति भाइयों को मार्ग पर लाना गुस्ताखी और नालायक़ी है तो मैं ऐसे गुस्ताख और नालायकों को, उन लोगों के बनिस्बत जो अपने को सभ्य कहते हुए भी अपने देश भाइयों का गर्दन पर छुरी चलाते हैं, पूज्य समझता हूँ।'

मालती ने अत्यधिक क्रोध से रुवासी-सी होकर कहा—'मैं इतनी बेइज़्ज़ती बर्दाश्त नहीं कर सकती। मेरा इस घर में गुज़ारा न होगा।'

भूपेन्द्र ने लापवाही से कहा—'तुम इससे चाहे जो कुछ समझो, मैं किसी के लिए भी निरपराध पर अत्याचार नहीं कर सकता हूँ।'

मालती का हठी व क्रोधी स्वभाव इस समय पूर्णतः जाग्रत हो उठा था, वह उस समय कोई तर्क सुनने को तयार न थी। दुःख, क्रोध अपमान और अभिमान से भरी हुई वह कमरे के बाहर चली गई। अपने कमरे से केवल एक अटैची केस, जो उसने अपने पिता के यहाँ से पाया था, लेकर घर के बाहर निकल गई। हृदय में वह यही सोच रही थी—'मेरी कितनी बेइज़्ज़ती हुई, कानपुर होता तो बाबूजी इस मुँह ज़ोर धोबी की हंटरों से खाल खींच लेते।'

मालती स्टेशन पहुँची तो बारह बजकर चालीस मिनट पर कानपुर के लिये छूटनेवाली गाड़ी तयार थी। उसने टिकट खरीदा और इंटर क्लास में आ बैठी। गाड़ी चलने में दस मिनट की देर थी। वह चुप-चाप बैठ गई, मन किसी बात में लगता न था। वह आज की घटना पर आलोचनात्मक दृष्टि डालने लगी, परन्तु उसकी समालोचना पक्षपातपूर्ण थी।

उसकी समझ में यह बात ठीक जँचती ही न थी कि एक धोबी का पक्ष लेकर कोई व्यक्ति किसी महिला का अपमान करे। मैं यह कहती हूँ कि कोई किसी को ज़बर्दस्ती तो खद्दर नहीं पहना सकता। वह तो अपनी-अपनी मर्ज़ी है। जब मैं जीवन भर जंगलवाड़ी और तनज़ेब पहनती रही हूँ तो कोई वजह नहीं कि ज़बर्दस्ती मुझे कोई मोटे कपड़े पहनावे।

परन्तु मैंने यह क्या अच्छा किया जो घर से चली आई? शायद यह कुछ ठीक नहीं हुआ। फिर भी उन्होंने उस धोबी के सामने मेरी जो बेइज्ज़ती की है वह क्षम्य नहीं है।

मैं घर जा रही हूँ। बाबूजी और माताजी तो मेरे घर पहुँचने पर प्रसन्न ही होंगे, परन्तु चाचाजी को मेरा इस प्रकार अकेले पहुचना ठीक न लगेगा। वे क्रुद्ध होंगे और बहुत मुमकिन है कुछ कह भी बैठें। चाची जी वैसे तो बहुत मिलनसार हैं लेकिन उपदेश देने के समय बड़ी पण्डिता हो जाती है। माताजी का डर तो उन्हें अवश्य है, परन्तु एक-आध उपदेश सुनाये बिना वे मानेंगी नहीं। तब तो बड़ी बुरी बात होगी। सुधा और मिसेज़ शर्मा के लिये एक नया मसाला मिल जायगा। लेकिन इसका इलाज क्या है? यही कि मैं कानपुर न जाऊँ।

गाड़ी छूटनेवाली थी कि मालती दर्वाज़ा खोलकर प्लेटफार्म पर उतर पड़ी और इधर-उधर टहलने लगी। मन-बहलाव के लिये लीडर खरीद लिया और पन्ने पलटने लगी। अखबार भी उकताकर बन्द करने ही वाली थी कि वाण्टेड (आवश्यकता है) के कालम में नज़र पड़ी। विज्ञापन का आशय था—

"आवश्यकता है—एक बी० ए० या इण्टर सी० टी० अध्यापिका की, जो दो लड़कियों को अँगरेज़ी शिक्षा दे सके। वेतन कम से कम ५०) और योग्यतानुसार ६५) तक दिया जायगा। पता—प्राइवेट सेक्रेटरी श्रीमान् महाराजा साहब उमागढ़ राज्य।"

यह विज्ञापन मालती को अपनी कठिनाई से छूटने का अच्छा साधन प्रतीत हुआ। वह सोचने लगी—'किसी की धौंस सहने और ताने सुनने से तो यही अच्छा होगा कि मैं स्वतंत्रता से अपना जीवन व्यतीत करूँ। अपने पेट के लिये परिश्रम करूँगी और स्वच्छंदता से रहूँगी। इतना वेतन मेरे खर्च के लिये कम नहीं है।'

थोड़ी देर के लिये उसके हृदय ने डगमगाना शुरू किया। कभी स्वतंत्रता और स्वच्छंदता का प्रलोभन देख वह स्टेट जाने को उत्साहित हो जाती और कभी एकाकी जीवन की कठिनाइयों पर विचारकर हतोत्साह हो जाती। अन्त में मालती की स्वातंत्र्य-प्रिय प्रवृत्ति ने अपने जीवन में परिवर्तन करने का निश्चय किया।

उमागढ़ के लिये इलाहाबाद से गाड़ी बदलनी पड़ती थी। स्वावलंबी बनने की दृढ़ इच्छा मन में रखनेवाली मालती को लेकर, गाड़ी छूटी।

* * *

मालती जिस समय ताँगा स्टेशन से करके उमागढ़ पहुची तो दीये जल गये थे। उमागढ़ काफ़ी बड़ी रियासत थी और इसलिये उसकी शान-शौक़त भी खूब बढ़ी-चढ़ी थी। बाजार बड़ा ही शानदार और सुसज्जित था। सोने-चाँदी की दूकानों पर विशेष चमक-दमक और भीड़-भाड़ थी। फूल वालों ने अपनी दूकानों को बिलकुल फुलवाड़ी बना रक्खा था।

मालती का ताँगा बाज़ार के बीच से चला जा रहा था, उसने ताँगेवाले से पूछा—'क्योंजी सेक्रेटरी साहब की कोठी अब कितनी दूर पर है।

"अब तो आगयी सरकार।"

बाज़ार की भड़भड़ और आबादी का घनापन हटते ही ताँगा एक साफ़ और जनशून्य सड़क पर चलने लगा, जिसके दोनों ओर के पेड़ उसकी

शून्य सुन्दरता को द्विगुणित करते थे। थोड़ी-थोड़ी दूर पर लगे हुए बिजली के पोल सड़क पर लाइट और शेड में अन्तर बतला रहे थे।

एक जगह सड़क पर बिलकुल सीधा चौराहा बना हुआ था। ताँगा बाईं ओर को घूमा और उस सड़क के ख़त्म होते ही एक बड़े शानदार बँगले के सामने खड़ा हो गया।

ताँगेवाले ने उतर कर अदब के साथ कहा—'यही बँगला है मेम साहब।'

मालती ने ताँगे पर बैठे-बैठे कहा—'अच्छा यह काग़ज़ सेक्रेटरी साहब के पास पहुँचा दो।'

'जो हुकुम सरकार'

मालती ने एक कागज के ऊपर अपने पार्कर से लिखा—राज-कुमारियों के ट्यूशन की उम्मीदवार—और ताँगेवाले को दे दिया।

ताँगेवाला वह कागज लेकर बँगले के अन्दर चला गया। मालती ताँगे पर बैठी हुई इधर-उधर देख रही थी। फुलवाड़ी के अर्ध-आलोक और अर्ध-अंधकार में झिल्ली की आवाज और कभी-कभी घोड़े के पैर खटकाने की आवाज के सिवाय कुछ न सुनाई देता था। बँगले में कोई आदमी इधर से उधर जा रहा था और कोई उधर से इधर; परन्तु सब अपने काम में लगे मालूम होते थे। मालती ताँगे पर बैठी हुई किसी अज्ञात भय से व्याकुल हो रही थी कि ताँगेवाला एक आदमी के साथ आता हुआ दिखाई पड़ा।

आगन्तुक ताँगे के बहुत निकट आकर खड़ा हो गया और मालती को ऊपर से नीचे तक देखता हुआ बोला—'ले चलो गेस्ट-हाउस (अतिथिशाला)।'

ताँगा उसी चौराहे पर लौटकर सीधा बढ़ गया और एक छोटे से बँगले के सम्मुख आकर खड़ा हो गया।

उस आदमी ने ताँगे से उतरकर कहा—'यही आप के ठहरने की जगह है। सेक्रेटरी साहब से मुलाक़ात जल्दी ही होगी।

मालती ताँगे से उतर पड़ी और पर्स से ताँगे वाले को देने के लिये पैसे निकालने लगी।

उस आदमी ने कहा—'इसका हिसाब दफ़्तर से होगा आपको पैसे देने की ज़रूरत नहीं।'

यह कहकर उसने मालती का हैण्डबेग उठाया और बँगले में चला। अन्दर जाकर स्विच दबाते ही बरामदे में रोशनी फैल गई। कमरे का दरवाज़ा खुलने और बल्ब जलने पर मालती ने देखा कि ड्राइंगरूम भली-भाँति सुसज्जित था और उससे सटे हुए अन्य आवश्यक कमरे भी अपने-अपने ज़रूरी सामान से आरास्ता थे। चीज़ें इस तरह साफ़ और क़रीने से लगी हुई थीं मानो किसी का रोज़ का रहने का बँगला हो।

उस आदमी ने कहा—'तब तक आप आराम कीजिये, भोजन आता है और एक दास और दासी भी थोड़ी देर में आपकी सेवा के लिये आ जायँगे। बाक़ी सब चीज़ें आपने देख ही लीं। यदि किसी ख़ास चीज़ की ज़रूरत हो तो मुझे बताइये।'

मालती ने कहा—'नहीं मुझे कुछ नहीं चाहिये। तुम्हारा नाम क्या है?'

'मेरा नाम किशनसिंह है सरकार।'

'यहाँ क्या काम करते हैं?'

'ज़िमेदार हूँ हुज़ूर।'

किशनसिंह चला गया। खाना लेकर दासी आई। मालती ने भोजन किया और स्लीपिंग रूम में जाकर लेट गई।

दासी ने बड़े विनीत स्वर से कहा—'पैर दाब दूँ।' मालती ने मुस्कराकर कहा—'नहीं।' दासी कमरे के बाहर ही जाकर लेट गई।

शय्या पर पड़ी हुई मालती मन में सोचने लगी—"मैं अपने बल पर जब इतना सुख व वैभव पा सकती हूँ तब परतन्त्र रहने की मुझे क्या आवश्यकता।' यह सुख-सागर में ग़ोते लगा रही थी कि इधर-उधर की आशंकाओं ने आ घेरा।

'यह मार्ग क्या बिलकुल निष्कंटक है ?' उसने अपने हृदय को टटोला । 'अब तो पैर रख ही दिया है जैसी पड़ेगी देखा जायगा । वहाँ तोक्या सभी जगह सुख-दुख का सम्मिश्रण रहता है ।'

यही सब सोचते-विचारते मालती को नींद आ गई ।

* * *

मालती के चले जाने के बाद भूपेन्द्र अपने कमरे में आ बैठे और मन ही मन अपने कार्य की आलोचना करने लगे । 'इसका तो कोई मतलब नहीं है कि अगर एक छोटा आदमी ठीक बात कहता है और प्रतिष्ठित व पढ़ा-लिखा ग़लत है तो हम शील और मान का विचार कर उस प्रतिष्ठित पुरुष की हाँ में हाँ मिलाये चले जायँ । इतना ही नहीं उस सच्चे आदमी को दंड दिया जाय और वह भी अकारण जीविका हरण-सा कठिन । यह बात तर्कपूर्ण और न्यायसंगत तो नहीं है ।'

आगम कुर्सी पर बैठे हुए भूपेन्द्र इन्हीं विचारों में मग्न थे कि मिस्टर चौहान ने कमरे में प्रवेश किया और मुस्कराते हुये बोले—'कहिये मिस्टर सिंह आज किधर सूर्य उदय हुए जो आप खाली बैठे दिखलाई देते हैं ?'

भूपेन्द्र ने खड़े होकर कहा—'कोई विशेष बात नहीं है यों ही बैठा था । आज आप इधर कैसे भूल पड़े ।

'भाई मैंने कहा चलो भूलना हमीं को है तुम तो भूलोगे नहीं ।' फिर गंभीर होकर कहा—'इधर कैमेस्ट्री पर एक किताब लिख रहा था उसी के कारण छुट्टी न मिलती थी ।'

'यह कहिये कि आजकल रुपये कमाने में लगे हुए हैं ।'

चौहान उनकी टिप्पणी सुनकर मुस्करा दिए, फिर बोले—'और कहो मिसेज़ सिंह का क्या हाल है ?'

भूपेन्द्र—हाँ...वो अच्छी—आपके भतीजे का इंगलैंड जाने का क्या तय हुआ ?

चौहान ने कहा—'मेरी बात क्यों उड़ाते हो ! पहले ठीक जवाब दो । क्या हुआ है उन्हें ?'

भूपेन्द्र का मुँह उतर गया। 'वे तो आज नाराज़ होकर कानपुर चली गई हैं।'

मिस्टर चौहान के कारण पूछने पर भूपेन्द्र ने उन्हें पूरा हाल बताया।

मिस्टर चौहान और भी गंभीर होकर बोले—'आप दोनों एक दूसरे से बढ़कर हैं। आपका तो भला कहना ही क्या है। आप सारी तार्किक युक्तियाँ और लाजिक का प्रयोग घर ही में करते हैं। श्रीमान् माफ़ कीजियेगा, गृहस्थी में तर्क, सत्य और न्याय की अपेक्षा नीति की अधिक आवश्यकता होती है। आपसे मिसेज़ सिंह कभी यह आशा नहीं करती थीं कि आप दूसरे की तरफदारी में न्याय और सत्य के लिये उनसे लड़ पड़ेंगे। भाई बात यह है कि अपने आदर्श से संसारी लोग यही आशा करते हैं कि वह चाहे गलती पर हो चाहे सही, पर वह उन्हीं की तरफ़दारी करेगा।'

'फिर उनकी भी यह ग़लती है कि इस ज़रा-सी बात पर इतना बिगड़ कर घर से चली गईं। उन्हें चाहिये था कि इस धोबी से कपड़े न धुलवातीं दूसरा रख लेतीं। धोबियों की भी कुछ कमी है! ज़िन्दगी तो इस घर में काटना है, बारबार वहाँ जाने से क्या लाभ।'

भूपेन्द्र ने मुस्कराकर चुटकी-सी ली—'अभी वहाँ वालों की मुहब्बत नहीं छूटी है।'

चौहान ने कहा—देखिये जनाब, जबर्दस्ती करके आप अपने विचार किसी पर नहीं लाद सकते हैं। आप अपनी देशभक्ति के जोश में दो-चार लेक्चर तो उन्हें सुना ही देते होंगे।'

भूपेन्द्र ने कहा—'नहीं मैंने कभी उन्हें इस बात के लिये मजबूर नहीं किया कि वे स्वदेशी पहनें। हाँ उन्होंने जब एक आध बार व्यर्थ ही खद्दर की बेइज़्ज़ती की तब मैंने दो-चार बातें कहीं।'

चौहान ने कहा—'बड़ी कठिन समस्या है। विचार न मिलने पर गार्हस्थ्य जीवन अवश्य ही सुखदायी नहीं रह जाता। अच्छा अब तुम क्या करोगे?'

भूपेन्द्र—'करूँगा क्या, वो सफ़र करने गई हैं। मैं तो घर पर हूँ ही, पहुँच का पत्र तो उन्हें ही डालना चाहिये।'

चौहान—'आप से तर्क तो चौबीस घंटे में एक क्षण भी नहीं छूटता। अजी कोई छुट्टी पड़े तो जाकर मना लाना। यह रोज़-रोज़ की नाराज़गी अच्छी नहीं।'

भूपेन्द्र—'देखा जायगा।'

मिस्टर चौहान—'देखा नहीं जायगा। आपको जाना पड़ेगा और मैं भेजूँगा।'

भूपेन्द्र ने कोई उत्तर न दिया। मिस्टर चौहान उनकी पत्नी की ओर से इतनी उदासीनता देखकर मन में दुःखित थे। वे मन में सोचते थे—'मिसेज सिंह आधुनिक शिक्षाप्राप्त युवती हैं फिर भूपेन्द्र की इतनी उदासीनता उन्हें कैसे सह्य हो सकती है।'

* * *

दो रोज हो गये; परन्तु सेक्रेट्री साहब से मुलाकात न हुई। वे पास ही किसी जंगल में राजा साहब के साथ शिकार पर गये हुए थे। मालती ने भी अधिक उत्सुकता न दिखलाई क्योंकि उसे यहाँ किसी प्रकार की असुविधा न थी। सभी बातों का प्रबन्ध था। नौकर-चाकर उसके इशारे पर चलते, भोजन का इतना सुन्दर प्रबन्ध था जैसा बड़े-बड़े धनिकों के यहाँ देखने में नहीं आता। लेकिन एक बात जो उसके मन में खटकती रहती वह यह थी कि जितने नौकर-चाकर या आस-पास के बँगले वाले थे, यद्यपि उसके प्रति बड़ा आदर-भाव प्रगट करते; परन्तु उनके नेत्रों में उसके प्रति एक घृणा की झलक होती थी, जिसे मालती ने ध्यान देने पर कई बार देखा था।

मालती को उमागढ़ आये आज चौथा दिन था। आज राजा साहब और सेक्रेट्री साहब आने वाले थे। लगभग आठ बजे का समय था। मालती ने नहा-धोकर एक सुन्दर साड़ी पर अपना समूर का चेस्टर पहना और जूते पहनकर बाग़ में टहलने लगी। फिर धीरे-धीरे बाजार की ओर चल दी।

बाज़ार खुल चुका था, सड़कों पर छिड़काव हो गया था, पर विशेष चहल-पहल न थी। दूकानों पर बैठे हुए दूकानदार सौन्दर्य की

प्रतिमा मालती की ओर देखते ही रह जाते। कोई उसे घूरता ही रह जाता, कोई देखकर खरीद के लिये दूकान की तरफ़ बुलाता।

आगे बढ़ने पर मालती ने, एक बड़ी इत्र की दूकान पर एक दूकानदार को, जो स्वस्थ, गौरवर्ण, सुन्दर और देखने से ही दृढ़ विचारवाला प्रतीत होता था, बैठे देखा। उसके गौर-वर्ण पर उसके खद्दर के कपड़े खूब ही खिल रहे थे। मालती को देखकर उसने न दूसरे दूकानदारों की भाँति घूरा ही, न दूकान में बुलाया ही, वरन् एक उपेक्षा की दृष्टि डालकर वह दूसरी ओर देखने लगा। इस दूकानदार के नवीन व्यवहार को देखकर मालती कौतूहल-वश ही दूकान के अन्दर चली गई।

दूकानदार ने खड़े होकर ऐसे स्वर से, जैसे वह मालती के विषय में बहुत कुछ जानता हो, लापरवाही से पूछा—'गेस्ट हाउस में ठहरी हो?'

मालती दूकानदार के आडम्बर-हीन व्यवहार पर कुछ चौंककर बोली—'हाँ।'

दूकानदार—'ट्यूशन के लिये आई हो?

मालती ने फिर संक्षेप में उत्तर दिया—'हाँ।' यह कहकर वह दूकान की चीजों की तरफ़ देखने लगी।

इस बार दूकानदार ने अपने स्वर में कुछ अधिक स्थिरता और गाम्भीर्य लाकर कहा—"तुम्हारा ब्याह हो गया?"

मालती सहसा बिगड़ उठी—'इन बातों से तुमसे क्या मतलब? दूकानदारी करने बैठे हो कि हुलिया पूछने।'

दूकानदार उससे भी अधिक गरम होकर दृढ़-स्वर में बोला—'बात यह है कि मुझे अपनी भलाई से तुम्हारी हानि का अधिक ध्यान है।'

दूकानदार की बात से मालती प्रभावान्वित होकर नम्रता से बोली—'मेरी हानि से आपका क्या मतलब है?'

दूकानदार—'सुनो! यहाँ के राजा और सेक्रेट्री बड़े धूर्त हैं। ऐसे ही ट्यूशन का विज्ञापन निकालकर न जाने कितनी महिलाओं का

जीवन नष्ट कर चुके हैं। अब की बार तुम इस जाल में फँसी हो। वे दोनों धूर्त आजकल यहाँ हैं नहीं, नहीं तो तुम्हें अब तक स्वयं इसका परिचय मिल गया होता।'

दूकानदार की इस बात पर मालती घबड़ा गई। 'मैं इन बातों को क्या जानूँ। मैं अभी जाकर यहाँ से रवाना हुई जाती हूँ; आपने बड़ी कृपा की जो मुझे इस संकट से बचा लिया।'

मालती की इस अनभिज्ञता और सरलता पर दूकानदार को हँसी आ गई। उसने कहा—'यहाँ से चले जाना उतना आसान नहीं है, जितना तुम समझ रही हो। यही नौकर-चाकर जो हरदम हाथ बाँधे तुम्हारे सामने खड़े रहते हैं, जब तुम यहाँ से जाने लगोगी, तुम्हारे शत्रु हो जायँगे। इस तरह से तुम संकट में पड़ जाओगी।'

मालती व्याकुलता से बोली—'यह भी अजब अन्धेर है, मैं तो अभी जाऊँगी, देखूँ कैसे रोकते हैं। अँगरेज़ी राज्य है—नवाबी थोड़े ही है।

दूकानदार ने हँसकर कहा—'यहाँ नवाबी ही है। इस तरह तैश में काम करने से तुम कहीं की न रहोगी।'

मालती ने उसकी ओर कातर-दृष्टि से देखा। उसने मालती को धीरज बँधाते हुए कहा—'घबड़ाओ नहीं, मैं तुम्हारी पूरी मदद करूँगा, लेकिन मैं जिस तरह बताऊँ, तुम्हें उसी तरह चलना होगा।'

मालती ने उसकी ओर श्रद्धा से देखा और बोली—'यदि आप कहिये, तो मैं वहाँ से अपना बेग ले आऊँ।'

दूकानदार—'तुम्हारे सतीत्व और आत्म-सम्मान के आगे उस बेग का मूल्य कुछ नहीं है। यदि सेरों हीरे जवाहरात खोकर भी तुम यहाँ से अछूती निकल जाओ, तो मैं तुम्हें भाग्यशालिनी समझूँगा।'

इतना कहकर दूकानदार ने उसे अपने पीछे आने का इशारा किया। अन्दर का दरवाज़ा खोलकर वह दूकान से ही लगे हुये मकान में, जो उसके रहने के लिये बना हुआ था, चला गया। इसके बाद एक छींट की साड़ी और पैरों में पहने जाने वाले चाँदी के भारी

कड़े देकर उसने मालती से कहा—'अपने कपड़े उतारकर बाँध लो और ये पहन लो। इस लिबास में यहाँ से चलना आसान होगा। मैं जब तक तुम्हारे लिये इक्का लाता हूँ, तुम तैयार हो जाओ।'

थोड़ी देर में वह इक्का लेकर आ गया। मालती पैरों में भारी-भारी चाँदी के कड़े पहन हाथ भर का लम्बा घूँघट काढ़ इक्के पर आकर बैठ गई।

इक्का स्टेशन पर पहुँचा। पर्दे के अन्दर मालती दुलहन बनी बैठी थी। स्टेशन आया जानकर वह उतरी। रमेश (दूकानदार) टिकट ख़रीद रहा था। मालती सिकुड़ कर एक कोने में खड़ी हो गई। थोड़ी देर में ही उसे देखकर दो-चार पुलिस वाले उसके आस-पास चक्कर काटने लगे। गेस्ट हाउस से मालती के लापता हो जाने की ख़बर स्टेट की पुलिस को मिल गई थी। इसी कारण पुलिस वाले इतना सतर्क थे।

टिकट-घर के पास खड़े हुए रमेश मालती के पास टहलते हुए पुलिस वाले को देखकर चिल्लाये—'वहाँ क्यों चक्कर काट रहा है—बे?'

पुलिसवाला तेज़ होकर बोला—'बहुत गरम न होइये बाबू, यहाँ से एक औरत भाग रही है, उसी की जाँच हो रही है।'

रमेश टिकट ख़रीद चुका था। पुलिस वाले की तरफ़ तेज़ी से बढ़कर आया और ज़ोर से बोला—'ऐसा खींचकर हाथ मारूँगा कि होश पैतरे हो जायँगे। औरत भाग गयी है तो शरीफ़ औरतों को झाँकेगा?'

रमेश की बात सुनकर मुसाफिरखाने में बैठे हुए कई सज्जन भी पुलिस वाले को डाँटने लगे। पुलिसवाला स्थिति प्रतिकूल देखकर वहाँ से खिसक गया।

रमेश की बातें सुनकर मालती घूँघट में मुस्करा रही थी। रमेश के साथ वह गाड़ी में आ बैठी। गाड़ी जब प्लेटफार्म के बाहर हुई तो मालती ने हँसकर घूँघट खोला। सामने बैठा हुआ रमेश मुस्करा रहा था।

मालती—'तो अब मैं यह तामझाम उतारूँ न ?'

रमेश—'दो स्टेशन और चले जाने दो, तब इस राज्य की सीमा के बाहर तुम हो जाओगी। सम्भव है रेल में पुलिस का कोई आदमी चल रहा हो, वैसे तो तुम्हारा अब कोई कुछ नहीं कर सकता है, लेकिन मुझ पर यदि किसी को जरा भी शक हो गया तो मैं मुश्किल में पड़ जाऊँगा। बात यह है कि मुझे तो यहीं रहना है और यहीं काम करना है। दो-तीन बार मैं इसी तरह इन लोगों के हाथ में आये हुये शिकार छीन चुका हूँ, परन्तु परमात्मा की कृपा से ये लोग मुझे अभी पहचान नहीं पाये हैं।'

मालती ने श्रद्धापूर्ण दृष्टि रमेश की ओर डाली और कोमल कठ से बोली—'मैं आपसे जीवन भर उऋण न हो सकूँगी।'

मालती ने अपनी सारी कथा रमेश से बताई, क्योंकि उसने उसके हृदय में सहानुभूति की सरिता बहती देखी थी। इतने में तीसरा स्टेशन आ गया। रमेश ने प्लेटफ़ार्म पर उतरते हुए कहा—"मैं अब यहीं से उतर जाऊँगा, आगे तुम्हारे लिये कोई डर नही है। लेकिन बहन मेरी एक बात सुनो, यह मार्ग जिसपर तुम चल रही हो, बड़ा ही कंटकाकीर्ण है। इस पर चलने के लिये आत्मिक ही नहीं, शारीरिक शक्ति की भी आवश्यकता है। अपने पति के पास लौट जाओ। चाहे लड़ो, चाहे भिड़ो, लेकिन रहो अपने घर मे ही।'

गाड़ी छूटी, रमेश ने नमस्ते किया। मालती उत्तर देकर अश्रुपूर्ण नेत्रो से बर्थ पर आ गिरी। उसका आत्माभिमान उसे घर जाने को रोकता था। दूसरी ओर वह यह भी देख रही थी, बिना किसी पुरुष की सहायता वह अपनी रक्षा करने में समर्थ नहीं है। इस पर भी वह घर लौटने को राज़ी न थी। कानपुर या लखनऊ न जाकर उसने इस बार बनारस जाना तय किया; जहाँ उसे अपनी एक सखी का आश्रय नज़र आया।

* * *

बनारस पहुँचने तक मालती ने अपने मन में यही निश्चय किया कि

किसी सार्वजनिक स्थान में उसका ठहरना ठीक नहीं है। उसका सौन्दर्य, उसके साथ खुटाई करने में वहाँ भी कमी न रखेगा। क्योंकि आजकल भारतवर्ष में अपनी ही माँ-बहिनों पर अत्याचार करनेवाले गुण्डों की संख्या वर्षा-ऋतु के कीड़ों की भाँति बढ़ रही है। यह सब सोचकर वह अपनी सखी लीलावती के यहाँ, जिसका मकान ब्रह्मनाल में था, पहुँची।

लीलावती मालती को देखकर गले मिलकर खूब रोई। कानपुर के बालिका-विद्यालय में उनकी प्रगाढ़ मैत्री का सूत्रपात हुआ था जो अब तक चली आ रही थी। लीलावती एक साधारण स्थिति के पिता की पुत्री थी। इसी कारण एक हाई-स्कूल के साधारण अध्यापक के यहाँ ब्याह कर आई थी और अपनी स्थिति के अनुसार ही ब्रह्मनाल की गन्दी गली के एक दुतल्ले मकान में अपनी गुज़र करती थी।

लीला और मालती आज लगभग पाँच या छै वर्ष बाद मिली थीं। खूब जी भर रो लेने के बाद बातचीत हुई। मालती ने अपनी राम-कहानी आदि से अन्त तक रो डाली। सुनकर लीला ने दाँतों तले उँगली दबा ली—'यह कैसे जीवट की औरत है। अपने आदमी से रूटकर इतने दिनों से इधर-उधर घूम रही है। इसके दीदे में डर तो जैसे है ही नहीं।' यह सब सोचकर भीघ्र कट रूप से लीला कुछ बोली नहीं। मालती को पूरी कहानी सुनकर उसे भय उत्पन्न हुआ। कहीं ऐसा न हो कि मैं कोई बात कहूँ और यह डाँट बैठे। लीला के मन में फिर अपनी स्थिति पर अभिमान हुआ। 'मैं इसके इतना पढ़ी लिखी नहीं हूँ। इसके ऐसे मेरे पिता धनी नहीं, न मेरा पति ही इसके पति के समान बड़ी तनख्वाह पाता है; परन्तु फिर भी मैं इससे लाख दर्जे अच्छी हूँ। अपने पति की चार बातें सुन लेती हूँ मगर किसी और की तो हिम्मत नहीं है कि मेरी तरफ़ नज़र उठाकर देख ले। हम दोनों का स्नेह-संचित पुत्र हमारा मनोरंजन करता है। हमारे कुल का नाम उजागर करने को वह उत्पन्न हुआ है। हमारे-जैसा सुखी कौन है?'

मालती से इधर-उधर की बातें करती हुई लीला अपने पति और

पुत्र के लिये जलपान तय्यार करने लगी। उनके स्कूल से लौटने का समय हो गया था। थोड़ी देर में एक मदरासी कपड़े का सूट पहने, गौर-वर्ण बड़े-बड़े सुन्दर नेत्रोंवाले मिस्टर गुरहा ने कमरे में प्रवेश किया। उनके पीछे-पीछे आठ नौ वर्ष का एक सुन्दर बालक हाफ़पैन्ट और कोट पहने, छोटा-सा छाता लिए कन्धे में बस्ता लटकाये जीने पर खट-खट करता चढ़ आया। अपने कमरे में एक नई स्त्री को बैठे देखकर पिता पुत्र दोनों ही झिझके।

लीला ने लड़के के कपड़े उतारते हुए मालती का परिचय कराया। हाथ मुँह धोकर सब लोग नाश्ता करने बैठे। हँस-हँसकर मिस्टर गुरहा और लीला गृहस्थी के विषय में बात-चीत करते जाते थे। उनका पुत्र उनकी बात जब-तब काटकर उनके आनन्द को द्विगुणित कर देता था।

मालती ने लीला का यह सुख अपनी आँखों देखा, हृदय ही में एक ठंढी साँस ली, एक ईर्ष्या-पूर्ण दृष्टि उस सुखी परिवार पर डाली, फिर अपने मन में अतीत के काल्पनिक चित्र बनाने बिगाड़ने लगी।

मालती को बनारस आये आज तीसरा दिन था। वह प्रति दिन दोपहर को अपने लायक़ किसी काम की खोज में निकलती थी; परन्तु अब तक उसे सफलता न प्राप्त हुई थी।

सन्ध्या को वह हारी-थकी लौटी। मिस्टर गुरहा छत पर ही टहल रहे थे, मालती को देखते ही बोले—'कहिये क्या हुआ?'

मालती ने निराशापूर्ण स्वर में कहा—'अभी तक तो कुछ नहीं।'

मिस्टर गुरहा ने मुस्कराते हुए कहा—'आप इतना अधिक परेशान क्यों हैं? कहीं जंगल में थोड़े ही बैठी हैं, यह भी तो आप ही का घर है।'

मिस्टर गुरहा की सहानुभूतिपूर्ण बात सुनकर मालती के नेत्रों में आँसू डबडबा आये। आजकल उसे अपना जीवन बड़ा ही भारू मालूम होता था। उसके रुपये का अधिक भाग उमागढ़ में बेग में ही छूट गया था, जगह न मिलने के कारण उसे बड़ी निराशा हो रही थी। मिस्टर गुरहा की बात सुनकर उसने उन्हें कृतज्ञता भरी दृष्टि से देखकर रुँधे कंठ से धन्यवाद दिया।

इस बार मिस्टर गुरहा ने कहा—"मैंने आपके लिये एक ट्यूशन ढूँढ़ा है। काशी विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर मिस्टर चबलानी अपनी लड़की के लिये एक स्त्री-शिक्षक चाहते हैं। लड़की इस साल हाई-स्कूल की परीक्षा देगी। अध्यापिका को पचास रुपये मासिक वेतन मिलेगा और अगर वह चाहेगी तो ठहरने का स्थान भी।" इतना कहकर मिस्टर गुरहा ने मालती के मुँह की ओर देखा।

मालती के नेत्र प्रसन्नता से चमक उठे। उसने मुस्कराकर कहा—"मुझे ऐसी ही जगह की आवश्यकता है। आप मुझे मिस्टर चबलानी के बँगले का पता बतला दीजिये, मैं कल सबेरे ही उनसे जाकर मिलूँगी।"

मालती ने अपना कलम और नोटबुक निकाली। मिस्टर गुरहा ने पता बोलना शुरू किया—मिस्टर ए० एच० चबलानी नं० १५ मोती झील, बनारस।

इतने में लीला ने खाने के लिए आवाज़ दी। लालटेन के प्रकाश में मालती अपने ट्यूशन के ध्यान में मग्न धीरे-धीरे ज़ीना उतर रही थी। मिस्टर गुरहा पीछे थे, मन में सोचते थे—"इस क़दर धीरे जीना उतरने का क्या मतलब", परंतु सभ्यता विरुद्ध होने के कारण कुछ कह न सकते थे।

उस रोज़ रात में सोने जाते वक़्त जब मालती ने शीत के कारण कम्बल में अपने पैरों को सिकोड़ा तो उसका आत्माभिमान जाग्रत हो आया। लखनऊ लौटने की बात उसे हेय प्रतीत होने लगी। मिस्टर सिंह की धोबी के सामने की बातचीत उसके कानों में फिर गूँज उठी। वह आवेग में कह उठी—'यदि मैं अपनी जीविका का प्रबन्ध स्वयं कर सकती हूँ, तो किसी के तलुवे सुहलाने की मुझे क्या आवश्यकता है?'

दूसरे दिन प्रातःकाल ही ताँगा करके मालती प्रोफ़ेसर चबलानी के बगले के लिए चल पड़ी। विलायती जार्जियट की अंगूरी रंग की साड़ी के अन्दर से उसके स्वच्छ और सुन्दर शरीर की आभा फूटकर निकल पड़ती थी। बिलकुल नये फ़ैशन के जूतों में उसके पैर बड़े ही सुन्दर लगते थे।

चबलानी साहब के यहाँ पहुँचकर मालती ने अपना कार्ड अन्दर भेजा। नौकर ने आकर उत्तर दिया—'सब लोग प्रार्थना कर रहे है आप कमरे में चलकर बैठिये, मैंने इत्तिला कर दी है।"

मालती ने पूछा—"प्रार्थना कैसी ?"

नौकर ने आश्चर्यमयी दृष्टि से मालती को देखते हुए कहा—"आप प्रार्थना नहीं जानतीं, झंडे की प्रार्थना। अच्छा आइये बैठक में बैठिये चलके।"

मालती नौकर के पीछे-पीछे प्रोफ़ेसर साहब के बैठके में पहुँची जहाँ खादी की चादर फ़र्श पर बिछी थी, खादी की चाँदनी छत में तनी हुई थी, कुर्सियों पर खादी की गद्दियाँ थी और दरवाजे पर पर्दे भी खादी ही के थे। मालती अभी यह सब देख ही न पाई थी कि प्रोफ़ेसर साहब और उनके साथ तीन बच्चे कमरे में आये। सबके शरीर पर सफ़ेद खद्दर के ही वस्त्र थे।

कमरे में पहुँचते ही उन लोगों ने हाथ जोड़कर वन्देमातरम् किया। मालती भौंचक्की-सी खड़ी रह गई फिर नमस्ते का उत्तर देकर बैठ गई। बातचीत शुरू हुई। मालती ने कहा—"आपके यहाँ जिस लड़की का ट्यूशन है, मैं उसे देखना चाहती हूँ।"

प्रोफ़ेसर साहब ने नौकर से अपनी बड़ी लड़की को बुलवाया और मालती की ओर मुँह घुमाकर कहा—"किसलिये ?"

"मैं ही ट्यूशन करना चाहती हूँ।"

"आपने कहाँ तक शिक्षा प्राप्त की है ?"

"बी० ए० तक।"

इसी वक्त प्रोफ़ेसर साहब की लड़की ने मालती से वन्दे किया और आकर बैठ गई।

प्रोफ़ेसर—"कौन डिवीज़न ?"

मालती—"फर्स्ट।"

प्रोफ़ेसर—"यह सब तो बिल्कुल ठीक है, लेकिन देखिये, मैं राष्ट्रीय विचार का आदमी हूँ, मेरी सन्तान उसी वातावरण में पल रही है।

मेरे इन बच्चों को शुरू से ही सादगी और स्वदेशी की शिक्षा दी गई है। मुझे यह कहने के लिये क्षमा करें कि मुझे आपके विचार इसके प्रतिकूल मालूम होते हैं, जैसा कि आपके वस्त्रों से प्रतीत होता है। आप इस लड़की के सामने सादगी और सीधे-सादे जीवन का क्या आदर्श उपस्थित करेंगी? क्षमा कीजियेगा, यदि मैं यह कह दूँ कि मैं आपको इस लड़की को शिक्षा देने योग्य नहीं समझता।"

मालती की भवों में बल पड़ गए। क्रोध से उसके ओंठ काँपने लगे, वह बिगड़कर बोली—"तो इतनी सब बातें पूछने की और मुझे शिक्षा देने की आपको क्या आवश्यकता थी? मेरे विलायती कपड़े तो आपको यहाँ आते ही दिखाई दे गये होंगे?"

प्रोफ़ेसर साहब ने बहुत नम्रता से कहा—"आपका समय व्यर्थ नष्ट करने का मैं यथार्थ में दोषी हूँ और उसके लिये क्षमा-प्रार्थी भी हूँ। जिसे आपने शिक्षा समझा, वह मैंने शिक्षा के विचार से न कहा था, वह मेरे व्याख्यान आपको न दे सकने का कारण था। यदि मेरी किसी बात से आपको तनिक भी कष्ट पहुँचा हो तो मुझे उसके लिये बहुत दुःख है।"

प्रोफ़ेसर साहब का यह मीठे ढंग से बातें करना, मालती को बहुत खल रहा था। वह जोर से कुर्सी पीछे खींचकर उठ पड़ी और सीधी कमरे के बाहर चल दी।

बच्चों को यह तमाशा बड़ा अच्छा लग रहा था। मालती की यह तावबाज़ी देखकर वे चंचल हो उठे और मालती ने कमरे के बाहर पैर रक्खा ही था कि सबने ताली बजा दी।

प्रोफ़ेसर साहब बच्चों को डाँटने लगे। ताली की आवाज़ से मालती बहुत खिसिया गई। उसने पलट कर तिरछी निगाह से प्रोफ़ेसर साहब को देखा और बोली—"इसी शिक्षा पर इतना गर्व है आपको?"

प्रोफ़ेसर साहब नम्रता से बोले—"बच्चे हैं क्षमा कीजिये।"

मालती पैर पटकती वहाँ से निकल आई।

घर में लीलावती दरवाज़े पर खड़ी हुई तरकारी खरीद रही थी। मालती को देखते ही बोली—"कहो क्या हुआ?"

मालती अभी तेज़ थी ही, जोर से बोली—"कुछ नहीं।" और धम-धम करती ऊपर चढ़ गई। लीला अपने मन में सोचने लगी—'यह इतना घमण्ड किस बात का दिखलाती है। मेरे ही दरवाजे टुकड़े तोड़े और मुझी को आँखें दिखाये। वाह री शान।"

* * *

धीरे-धीरे मालती को लखनऊ में गये पन्द्रह दिन हो गये। एक दिन मिस्टर चौहान ने आकर भूपेन्द्र से पूछा—"क्यों जी तुमने कानपुर कोई पत्र वग़ैरह लिखा?"

'अभी तक तो नहीं।' भूपेन्द्र ने सिर खुजलाते हुए उत्तर दिया। 'तुम भी यार एक ही आदमी हो।' अच्छा कल इतवार है। कानपुर चले जाओ और उन्हें मनाकर ले आओ। रोज-रोज झगड़ा करते हो, तो जल्दी जल्दी मेल भी तो कर लिया करो। इतनी लम्बी खामोशी तो बुरा होती है।'

दूसरे दिन भूपेन्द्र कानपुर पहुंचे। बैरिस्टर साहब के पहला प्रश्न करते ही उनका दम खुश्क हो गया। 'कहिये माला कैसी है?'

उन्होंने घबड़ाकर बैरिस्टर साहब की तरफ़ देखा। वे बिल्कुल गंभीर थे, कहीं मुस्कराहट या हँसी का उनके मुख पर चिह्न तक न था। भूपेन्द्र-सिंह बोले—'उन्हें तो लखनऊ में आये आज सोलहवाँ दिन है।'

बैरिस्टर साहब ने विचलित होकर कहा—'लखनऊ से आये आज सोलह दिन हुए और यहाँ अभी तक पहुँची ही नहीं। तो ऐसे बिना चिट्ठी-तार कैसे चल पड़ी थी? कुछ झगड़ा हो गया था।'

भूपेन्द्रसिंह ने धीरे से कहा—'जी हाँ।'

बैरिस्टर साहब का मालती के लिये प्रेम एकाएक जाग उठा। भूपेन्द्र को उन्होंने उसके अपराधी के रूप में देखा। बिगड़ कर बोले—'अरे बाबा, तो क्या बात हो गई थी जो उसे न उसी घर में, न इस घर में जगह रह गई? आप अपनी प्रोफेसरी के झोंके में कुछ अधिक प्रभावशाली लेक्चर दे गये होंगे।' इतना कहकर उन्होंने भूपेन्द्र की ओर उपेक्षा की दृष्टि से देखा।

भूपेन्द्र, बैरिस्टर साहब का बड़ा सम्मान करते थे। उनके हृदय में तो मालती के लापता हो जाने के कारण वैसे ही उथल-पुथल मची हुई थी बैरिस्टर साहब की बात सुनकर उन्हें बड़ा आघात लगा। सिर झुकाये बँगले के बाहर हो गये।

बैरिस्टर साहब ने भूपेन्द्र को बाहर जाते हुये देखा। वे अपने शब्दों के औचित्य और अनौचित्य पर विचार करने लगे। फिर तार की कापी उठाई और जितने रिश्तेदार और मित्रों को, जिनके यहाँ मालती के जाने की तनिक भी संभावना थी, उन्होंने तार लिख डाले।

सब तार नौकर के हाथ डाकखाने भेजकर वे कमरे में इधर-से-उधर बेचैन टहलने लगे।

रास्ते भर भूपेन्द्र की दशा अवर्णनीय रही। वे दुःख और ग्लानि से कातर हो रहे थे। लखनऊ स्टेशन से सीधे मिस्टर चौहान के यहाँ पहुँचे और घबड़ाये हुए सारी बात मिस्टर चौहान से कह डाली। मिस्टर चौहान ने उन्हें बैठाकर कपड़े उतरवाये, मुँह धोने को पानी मँगवाया, जलपान मँगवाया और बोले--देखो, तुम इतने बदहवास क्यों हो रहे हो? मिसेज सिंह गँवार नहीं हैं, जो रास्ता भूल जायँ या उन्हें कोई किसी प्रकार धोखा दे दे। मेरी समझ में तो यही आता है कि स्वयं अपने मन से कहीं ठहरी हुई हैं। इसका इलाज यह है कि जहाँ-जहाँ उनके जा सकने की संभावना हो वहाँ आप पत्र लिखें। मिसेज सिंह बड़ी भावुक और आत्माभिमानिनी हैं, यद्यपि उनका किसी परिचित के यहाँ ठहरना मुश्किल ही है, फिर भी आप कोशिश करिये। यदि आपका पत्र उन्हें कहीं भी मिल गया, तो उनकी भावुकता आपकी ओर से शीघ्र ही उनका हृदय साफ़ कर देगी। ऐसे आदमी को जितना जल्द क्रोध आता है, उतना ही जल्द शान्त भी हो जाता है। आप नाश्ता कर लीजिये, फिर पत्र लिख डालिये। सब्जेक्ट सब का एक होगा ही, कहिये मैं लिखवा दूँ।'

भूपेन्द्र ने कहा—'नहीं, मैं लिख लूँगा आप निश्चिंत रहिये।'

भूपेन्द्र को इस वक्त अपने ऊपर इतना क्रोध था कि वे सब बातों में अपना ही क़सूर देख रहे थे। जो पत्र उन्होंने लिखे, उनमें इस बात की स्पष्ट छाप पड़ी।

* * *

प्रोफेसर चबलानी के यहाँ से लौटने के बाद मालती को इतनी निराशा हो गई कि वह फिर कहीं कोशिश करने भी नहीं गई। आजकल वह बड़ी ही चिन्तित रहती थी। काम कोई उसे मिल नहीं रहा था और इतना वह जानती थी कि ऐसी हालत में लीला के यहाँ अधिक दिन ठहरा नहीं जा सकता। बात यह थी कि मिस्टर गुरहा सुशिक्षित व तजुर्बेकार होने के कारण मालती की मानसिक अवस्था को समझते थे और उसी के अनुसार मालती से व्यवहार करते थे; परन्तु लीला इन बातों को न समझती थी, इस कारण उसे मालती की नाववाजी बहुत बुरी लगती थी।

मालती को ऐसी हालत में लीला के यहाँ ठहरना बहुत बुरा मालूम होता था; परन्तु क्या करती और कोई चारा न था। आगे देखने पर उसे अँधेरा ही अँधेरा दिखाई देता था, पीछे लौटने में कुशल थी, पर उसका आत्माभिमान उसे झुकने न देता था।

जब आदमी को अपनी जीविका की चिन्ता होती है, तो उसके लिये रुपया सबसे बड़ी चीज़ हो जाता है और वह उसके लिये अपनी प्यारी-से-प्यारी वस्तु भी छोड़ने को तय्यार हो जाता है और हर एक रुकावट को अपने मार्ग से हटाने का प्रयत्न करता है। दुर्बल विचारों के लोग तो उसमें अपना चरित्र तक खो बैठते हैं; परन्तु दृढ़ विचार वाले जिसे किसी प्रकार का दुर्गुण समझ लेते हैं या ग़लत जानते हैं और वह किसी प्रकार उनके धन कमाने में अड़चन पैदा करता है, तो वे उसे शीघ्र ही हटाने का प्रयत्न करते हैं।

मालती ने जब देखा कि उसके विलायती वस्त्र जीविकोपार्जन में रुकावट डालते हैं, उसे उनसे घृणा हो गई और वह मौक़ा ढूँढ़ने लगी कि वह कब उन्हें उतार फेंके। बात यह थी कि मालती को अपने

आमोद-प्रमोद और राग-रंग से पिता के यहाँ कभी इतनी छुट्टी न मिली थी कि वह देश की दशा पर ध्यान देती। उसके पिता सरकार के अनन्य भक्त थे और वह इसी वातावरण में आरम्भ से ही पली थी। भूपेन्द्रसिंह ने इतने उग्र राष्ट्रीय विचार रखते हुये भी कभी इस बात का प्रयत्न न किया था कि वे मालती को विदेशी पहनने की बुराई और स्वदेशी के लाभ बताते। यही कारण था कि देश-व्यापक होने पर भी यह बात सुलझ कर एक सुशिक्षित व आत्माभिमानिनी महिला के दिमाग़ में अब तक न पहुच सकी थी।

आज यह बात मालती के सामने एक समस्या बनकर आई, विदेशी और स्वदेशी वस्त्रों ने आज तक उसके मार्ग में कोई अड़चन न डाली थी। भूपेन्द्रसिंह और उनके धोबी की बात की गहराई को वह समझ हो न सकी थी परन्तु उस दिन जब मालती अपने विदेशी वस्त्रों के कारण अपनी जीविका के एक साधन से वंचित रह गई, तो उसे उन पर क्रोध आ गया और वह उन्हीं के विषय में सोचती हुई बाहर निकली।

असहयोग आन्दोलन अपने पूरे जोर में चल रहा था। महामना मालवीयजी के निवास स्थान काशी में उसका वेग और भी प्रबल था। विलायती वस्त्रों की दूकानो पर स्त्री-पुरुष धरना दे रहे थे। मालती ने देखा विलायती वस्त्रों के विरुद्ध आवाज़ें लगाने वालों में स्त्रियाँ पुरुषों से पीछे नहीं है। वे विलायती वस्त्र न ख़रीदने के लिये लोगों से प्रार्थना करती हैं। इस पर भी यदि लोग नहीं मानते तो वे दूकानों के सामने लेट जाती और विनम्रता से कहता कि "निकल जाइये छाती पर से; आप को अपने देश और गरीबों से शान अधिक प्यारी है। मैनचेस्टर वाले आपके अधिक नजदीकी हैं।"

मालती ने यह सब देखा—उसे कुछ चेत हुआ। इतने में एक जुलूस निकला। केसरिया खद्दर की साड़ियाँ पहने महिलाएँ ही उसमें आगे थीं। हाथों में राष्ट्रीय झंडे थे और थीं तख्तियाँ, जिनमें विलायती वस्त्र से कितना रुपया विदेशी करोड़ पतियों की जेब में जाता है, खद्दर

पहिनने में कितनी विधवाओं और गरीबों का पालन होता है—इत्यादि का विवरण।

यह सब पढ़कर मालती की आँखें खुलीं। भौचक्की सी अपने स्थान पर खड़ी रह गई। इतने में पुलिस वालों ने जुलूस रोक लिया। हँसती हुई सब देवियाँ लारी में बैठकर, जेल यात्रा को चल दीं। जोश में पागल जनता ने एक स्थान पर जाकर विदेशी वस्त्रों की होली जलाई। मालती ने भी एक खद्दर की साड़ी जम्पर खरीदा और अपने विलायती कपड़े उस होली में जा फेंके।

घर लौटते समय वह अपने कार्य पर बड़ी प्रसन्न थी। मन में उसे इस बात का आश्चर्य था कि अब तक वह इन बातों से कैसे अनभिज्ञ रही। घर जितना निकट आता जाता था, उसकी प्रसन्नता कम होती जाती थी कि वह अब तक अपनी जीविका का कुछ प्रबन्ध न कर सकी। अपने और लीला के शाम के झगड़े की याद, उसे और भी दुःखित कर रही थी। वह सोचती थी—'इस देश में पति से विमुख होकर स्त्री आदर नहीं पा सकती। लीला मुझसे कितना प्रेम करती थी, मुझसे बातें करते उसका जी ही नहीं भरता था। आज वह यह समझती है कि यह निःसहाय है, रुपये-पैसे की इसके पास कमी है, तो उसे मुझसे बिलकुल प्रेम नहीं है, आठ दिन में ही ऊब गई। आज यदि मैं अपने पति से झगड़ा करके न आती, फिर चाहे कितने ही दिन रहती, मेरी खातिर होती, मेहमानदारी होती। मन में सोचती कि इसे कोई हमारा ही सहारा तो है नहीं, जरा बिगड़ेगी अपने घर चली जायगी; परन्तु आज मुझे भारस्वरूप देखती है।'

फिर अपने विषय में सोचने लगी,—'इन पन्द्रह-सोलह दिनों में यह अनुभव तो मैंने कर ही लिया कि मुझमें अपनी रक्षा करने की सामर्थ्य नहीं है। एक सहायक की मुझे आवश्यकता है। तब मेरा लखनऊ लौट जाना ही ठीक है। उसके बिना मेरा काम नहीं चल सकता; यह मैंने जान लिया। तब मुझे उनके सामने झुकना चाहिए। फिर अब तो मुझमें उनमें काफ़ी विचारों में सामञ्जस्य है। झगड़े की जो जड़ है, वह फूँके ही चली आ रही है।

घर पहुँची, तो लीला ने द्वार खोला। लालटेन के प्रकाश में मालती की खद्दर की साड़ी देखकर, उसके आकस्मिक परिवर्तन पर, उसकी आँखें प्रसन्नता से चमक उठीं। मिस्टर गुरहा ने मालती को बधाई दी। वे लोग स्वयं स्वदेशी के पोषक थे; परन्तु मालती के उग्र-स्वभाव के कारण उससे कुछ कहते डरते थे।

भोजन करके मालती लेटी, तो उसका जी काफ़ी हल्का था।

दूसरे दिन मालती ऊपर वाले कमरे में आराम कर रही थी कि मिस्टर गुरहा ने एक पत्र लिये हुए कमरे में प्रवेश किया। मालती उठ कर बैठ गई। मिस्टर गुरहा के मुख पर प्रसन्नता के चिह्न थे। मालती का हृदय धड़कने लगा—'किसका पत्र है, जो ये इतने प्रसन्न आ रहे हैं।'

इतने में मिस्टर गुरहा ने कहना शुरू किया—'आप बड़ी कठोर हैं। कब से निकली हैं, उनकी ख़बर न ली। देखिये बेचारे ने कैसा पत्र लिखा है।' वे लिखते हैं कि—'सब मेरी ही ग़लती है, उसके लिये मुझे कितना दुःख है, यह मैं ही जानता हूँ। यदि आपके यहाँ हो, तो कृपया शीघ्र ही सूचित करें, मैं बहुत उत्सुक हूँ।'

मालती ने हाथ में लेकर पूरा पत्र पढ़ डाला। उसका हृदय उसे धिक्कार रहा था—'कैसा विनयपूर्ण पत्र लिखा है, मैंने वास्तव में उनके साथ बड़ी कठोरता की है।' अपने मनोभावों को वह रोक न सकी। आँखों में आँसू भरकर बोली—'मिस्टर गुरहा, मैंने सचमुच बड़ा अपराध किया है। उनके हृदय को इस बात से काफ़ी ठेस पहुँची है, यह इस पत्र से साफ़ मालूम होता है।'

मिस्टर गुरहा और लीला मालती के शुभचिंतक थे और उन्हें मालती के मनोभावों को जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

दूसरे दिन मालती बनारस से लखनऊ के लिये रवाना हो गई।

गाड़ी जिस समय लखनऊ पहुँची, रात के साढ़े नौ बजे हुए थे। मालती के हृदय की दशा उस वक्त उस बालक की भाँति हो रही थी, जो क्रोध में अपनी पुस्तक फाड़ डालता है और बाद में अपना अपराध कहते हिचकिचाता है।

भूपेन्द्रसिंह की कोठी शाहनज़फ़ रोड पर थी। मालती ने ताँगा कर लिया और बैठकर चल दी। परन्तु हृदय की दशा विचित्र थी। जैसे-जैसे कोठी नज़दीक आती जाती, मालती के विचार टकराते जा रहे थे। वह सोचती थी—यह भी तो सम्भव है कि यह पत्र उन्होंने हृदय की आन्तरिक भावनाओं से प्रेरित होकर न लिखा हो। लोकलाज ने ही उन्हें ऐसा करने को मजबूर किया हो और उनके हृदय में मेरे प्रति अब भी वही भाव हो। ऐसी दशा में क्या होगा? मुझ पर दृष्टि पड़ते ही उनके मन में अभिमान उदय होगा। सोचेंगे—'एक झूठा-सच्चा पत्र देखते ही दौड़ी चली आई और मेरी ओर मुस्कराते हुए व्यंग्य-पूर्ण दृष्टि से देखेंगे। उस समय मेरे लिये बड़ा कठिनाई होगी, लाज और शर्म से मैं गड़ जाऊँगी। उस घर में रहना मुझे तब मरने से भी बदतर मालूम होगा।'

मालती इस उधेड़-बुन में लगी ही थी कि ताँगा शाहनजफ रोड के नाले की पुलिया पर पहुँच गया। मालती का हृदय ज़ोर से धड़कने लगा। अब बँगला ६० गज़ रह गया था वह इस तरह एकदम वहाँ न जा सकी। उसने आवाज़ दी—'ताँगेवाले रोको।'

रास खींचते ही घोड़ा रुक गया। मालती ने ताँगे का किराया चुका दिया और पैदल चल दी।

बँगला सामने आया; परन्तु पैर रुक गए, हृदय फिर ज़ोर से धड़कने लगा। बाहर आने के उस पार बरामदे में बल्ब जल रहा है। आराम कुर्सी पर वहाँ कोई लेटा है। मालती आगे चल दी, बँगले में जाने की उसकी हिम्मत ही न पड़ी। अपने मनोभावों में मग्न वह कितनी दूर चली आई यह उसे पता नहीं लगा। सोचती वह एक ही बात थी—'वे न मालूम मुझे किस दृष्टि से देखेंगे?'

जब थक कर पैरों ने जवाब दे दिया, तो विचार सागर में डूबती, उतराती मालती गोमती-तट पर एक शिला खंड पर बैठ गई। अँधेरा रह-रह कर गहरा होता जाता था, आकाश के नक्षत्र किसी टूटे हुए हार के टुकड़े से मालूम होते थे और सरिता का जल अँधेरे में पृथ्वी से ऐसा मिला जा रहा था कि ज़मीन होने का धोखा होता था।

अपने विचारों के उद्वेग में मालती ज़ोर से कह उठी—'माना कि यदि उन्हें मुझसे प्रेम नहीं है, वे लोक लाज ही के कारण मुझे बुलाते हैं ; परन्तु मुझे यदि उनसे प्रेम है, तो मुझे चाहिए कि ज़बर्दस्ती वहाँ रहूँ। उसमें मेरा कोई अपमान नहीं है।

किसी ने पीछे से बहुत ही मृदुल कंठ से कहा—'जिस जगह मान अपमान का ध्यान है, वहाँ सच्चा प्रेम नहीं है। प्रेम में बन्धन है, परतंत्रता है, स्वतंत्रता नहीं।'

मालती ने चौंककर पीछे देखा। नीरव रजनी में उस शिलाखंड के दूसरे सिरे पर बैठी एक शुभ्र वसना युवती अपने चमकते हुए नेत्रों से आकाश में कुछ ढूँढ़-सा रही थी।

'तुम कौन हो बहन इस अँधेरी रात्रि में यहाँ अकेली ?' मालती ने विस्मय भरे कंठ से पूछा।

'एक दुखिया'—कहकर वह जल की ओर बढ़ी।

मालती के कानों में उसके शब्द गूँज रहे थे। रात्रि की नीरवता में हाथों का छप-छप शब्द बड़ी दूर तक फैल गया। मालती ने कौतूहल वश पूछा—'कहाँ रहती हो ?'

जल में तैरते हुए सिर ऊँचाकर मुँह पर आते हुए काले बालों को हाथ से हटाते हुए उसने भोलेपन से पश्चिम की ओर उँगली उठा कर कहा—'उस पार बड़ी दूर सोने के से चमकते हुए तिनकों के झोपड़े में।'

जब तक वह दिखाई दी, मालती उसे देखती रही फिर अपने बँगले की ओर लौट पड़ी। थोड़ी ही देर पश्चात् जब मालती और भूपेन्द्र हृदय से हृदय लगाकर अपने हृदय के प्रतिकूल विचारों को अश्रुओं में बहाकर अपने मिलन को चिरस्थायी बनाने का प्रयत्न कर रहे थे, उस समय प्रकृति भी ओस के मोती संसार को भेंट कर रही थी !

'प्रतिकार'

सातवीं शताब्दी के अन्तिम वर्ष थे, जब भारतवर्ष ने पहली बार दुर्दिन देखे। भारत के सुख और शान्तिपूर्ण वायुमण्डल में धन-लोलुप, इस्लाम धर्म के कट्टर प्रचारक मुहम्मद बिनक़ासिम के आक्रमण से त्राहि-त्राहि मच गई थी। महाराज दाहिर की राजधानी एलोर आतताइयों के क्रूर करों में पड़कर एक बार रक्त से पूर्णतः रँग चुकी थी। महाराज दाहिर पकड़कर कत्ल कर दिये गये थे। सिंध राज्य की सारी सम्पत्ति और धनराशि अरब सैनिकों के ऊँटों पर लदी हुई थी। सरदार बिनकासिम लदे हुए ऊँटों की ओर देख-देखकर प्रसन्न होता था; परन्तु लूट के इस माल के सिवाय उसने कुछ और भी पाया था, जिसका विचार मात्र उसके हृदय को उल्लसित कर देता था। ये थीं विजित राजा दाहिर की चम्पे और जुही की भाँति खिली हुई दो युवती पुत्रियाँ। परमाल और सूरज नामक इन देवियों के सौंदर्य की उसने एक बार झलक मात्र देखी थी, जब कि अन्तःपुर में एकबारगी पहुँचकर उसने उन्हें पालकी पर बैठाकर डेरे की ओर ले चलने का आदेश दिया था। उसने उन दोनों के सौन्दर्य को अनायास ही देख लिया था और खुदा की इस कारीगरी की मन-ही-मन प्रशंसा भी की थी; परन्तु खलीफा का वह सच्चा सेवक था और जो कुछ वह लूट में पाता था, उसे खलीफ़ा के पाक क़दमों में पेश कर देना अपना पहला फ़र्ज़ समझता था। इसी कारण उसने सूरजदेवी और परमालदेवी को एक बार भी अपनाने की बात मन में न सोची थी और इन दोनों युवतियों को भी और लूट के माल की तरह खलीफ़ा के हरम में भिजवा देने की बात ही उसके दिल में आई थी। खलीफा को इतनी नायाब नज़र देने के ख्याल से दिल-ही-दिल खुश होता हुआ मुहम्मद बिनकासिम अपनी सेना और लूट के सामान के आगे अभिमान से सिर उठाये अरब की ओर चला जा रहा था।

काफिला चला जा रहा था। जहाँ उसमें बिनकासिम की भाँति

लोग हृदय में प्रफुल्लित थे, वहां सूरजदेवी और परमालदेवी की भाँति शोक की साक्षात् मूर्तियां भी थीं। यह सुनकर कि राजपूतों की वीर पुत्रियाँ होकर ये दोनों खलीफा के पास जीवित ही चली जा रही थीं कुछ लोगों के हृदय में बड़ा गहरा धक्का लगा : परन्तु उनका अरब जाने का अभिप्राय क्या था, यह कोई न जानता था ? डोली हिलती-डुलती चली जा रही थी। उसमें आमने-सामने बैठी हुई दोनों बहनें गम्भीरता से धीरे-धीरे परिस्थिति पर विचार कर रही थीं।

छोटी बहन सूरजदेवी अपने जीवन का अन्त कर इन आततायियों से छुटकारा पा जाना चाहती थी। कठोर अरब सैनिकों के दुष्कृत्यों को देखकर उनके संसर्ग में रहने का विचार उसे बड़ा ही असंगत प्रतीत होता था ; परन्तु उसके अब तक जीवित रहने का कारण परमालदेवी ही थी, जो नित्यप्रति उसे सान्त्वना देकर और पिता की क्रूरतापूर्ण मृत्यु का बदला लेने की बात कहकर उसे मरने से रोके रहती थी।

* * *

दीन और दुनिया के मालिक खलीफा मुहम्मदउमर का शानदार दरबार लगा हुआ था। स्वर्ण के रत्न जटित सिंहासन पर खलीफा विद्यमान थे। उनके दोनों ओर उनके मनस्वी और क्रूर सरदार, जिनकी वीरता की कहानियाँ दूर तक फैली हुई थीं, खड़े हुये थे। दरबार की प्रारम्भिक कार्यवाहियाँ हो जाने के बाद मुहम्मद बिनकासिम, जिसकी सिंध विजय का समाचार खलीफा सुन चुके थे, उनकी खिदमत में लूट के सामान सहित पेश हुआ। मुस्कराकर कुशल-प्रश्न पूछने के पश्चात् खलीफा ने लूट का सामान देखना चाहा।

थालों में ढेर के ढेर लगे हुए हीरे, जवाहरात, नीलम और पुखराज के अनगिनती थालों के बाद सोने का सामान आया। सम्पत्ति देखते-देखते खलीफा की आँखों में चकाचौंध भी आ गई और जी भी ऊब उठा। उन्होंने उकताकर कहा—'अच्छा यह सब खजाने में पहुँचा दो।' इसी समय चार सैनिक कारचोबी के परदे से टंका हुआ एक पीनस लिये हुये खलीफा के सामने आ खड़े हुये। खलीफा की